Non-subscriber's price : Re 1-50 p.

फिलहाल

मेहनतकशों का
मुखपत्र
अंक ५
योगदान ५० पैसे

इस अंक में......

जनता पार्टी और मजदूर वर्ग

एक बार फिर से "जनवाद" की नकाब ढीली हो रही है। आज के संकटग्रस्त पूंजीवाद में ह· सरकार को एक न एक रूप में किस प्रकार मजदूरों पर हमला करना ही पड़ रहा है — यह "जनता पार्टी" के रिकार्ड से जाना जा सकता है। सुनहरे वायदों की पट्टी रट कर गद्दी पर बैठने के बाद आज उसके द्वारा बैठाए गए आयोग कांग्रेस सरकार द्वारा एमेरेजेन्सी से शुरु की गई दमनकारी नीतियों को किस प्रकार और बढ़ावा दे रही हैं, पुलिस दमन का हौवा कैसे बढ़ चढ़ कर हर राज्य में हावी हो रहा है यह "फिलहाल" के पहले तीन लेखों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसका मतलब यही है कि इन्दिरा कांग्रेस का खुला समर्थन करने वाला बड़ा पूंजीपती वर्ग ही नहीं, जनता पार्टी में गाँव के "अमीर किसान", शहरों के मध्यम वर्ग का प्रतिक्रियावादी हिस्सा और व्यापारी तथा पूंजीपति वर्ग के अन्य पिछड़े हिस्सों की सरकार को भी मजदूर वर्ग का खुला दमन करने की आवश्यकता महसूस होने लगी है।

भूतलिंगम--वेतन जाम और वेतन कटौती का नया नाम

मुख्य प्रस्ताव

१. राष्ट्रीय न्यूनतत वेतन १९८३ में १५० रुपया होना चाहिए : तृतीय पे कमिशन के अनुसार १९७५ में यह ३०७ होना चाहिए था !

२. खेतिहर मजदूरों के लिए न्यूनतम वेतन की कोई जरूरत नहीं है !

३ बोनस खतम करो !

४. महगाई भत्ते में छुपे रूप से भारी कटौती !

५. महंगाई सूचांक में से घी, शराब, सिगरेट आदी के दामों को हटा दो !

६. पे स्केलस को छोटा करो !

वैसे तो आयोग बैठाकर कागजों का ढेर इकट्ठा करना कांग्रेस के शासन के जमाने से ही सरकारी परम्परा बन चुकी थी। जिस समस्या को टालना हो, जिस आन्दोलन को ठंडा करना हो उसे जाँच समिति के दलदल में फँसा दो। फिर। फिर क्या ? रिपोर्ट आए तो कानून बना दो। कानून बना है, तो कभी न कभी लागू हो जाएगा। मजदूरों की समस्याओं पर आज कितने ही सुधारवादी कानून—न्यूनतम वेतन कानून, प्रोविडेंट फ़ंड के नियम, मियाँमाँय ट्राइब्यूनल द्वारा रेल मजदूरों की परिस्थिति में सुधार करने का प्रस्ताव—या तो सरकारी फाइलों की खाक छान रहे हैं या नाममात्र के लिए लागू किए जा रहे हैं।

लेकिन भूतलिंगम समिति की रिपोंट को इसी नजरिए से देखना मजदूर वर्ग के लिए आत्महत्या करने के बराबर होगा। जैसा कि हम आगे के अंकों में विशलेषण के जरिए बताएंगे भूतलिंगम समिति के या नए औद्योगिक अधिनियम जैसे प्रस्ताव आज पूरी पूंजीवादी व्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक हो गए हैं। आज नहीं तो कल कोई न कोई पूंजीवादी सरकार, जब अपने आपको शक्तिशाली महसूस करेगी, तब बिना बहस के इन तमाम प्रस्तावों को वह मजदूर वर्ग के ऊपर लाठी और बन्दूक के बल पर थोप देगी। इसलिए इनको समझना और इनके खिलाफ लड़ने की तैयारी में हिस्सा लेना—यही इस लेख का उद्देश्य है।

भूतलिंगम समिति प्रस्तावों का अगर निचोड़ निकाला जए तो कहना पड़ेगा कि इनका उद्देश्य मजदूर वर्ग के वेतनों को भविष्य में बढ़ने से रोकना ही नहीं है उनमें कटौती करना भी है। यह बात उसके अलग-अलग प्रस्तावों का विशलेषण करने से साफ हो जाती है।

राष्ट्रीय न्यूनतम वेतन

भूतलिंगम समिति के अनुसार सरकार को राष्ट्रीय स्तर पर एक न्यूनतम वेतन लागू करना चाहिए, जो अठ्ठारह साल से अधिक उम्र के मजदूर को अवश्य मिलेगा चाहे वह औरत हो या मर्द। शुरु में मासिक न्युनतम वेतन १०० रुपया होना चाहिए या प्रति दिन ८ घंटे के काम के लिए चार रुपया मिलना चाहिए। इसको हर दो साल पर इस ढंग से बढ़ाया जाना चाहिए कि सात साल के बाद १९७८ के दामों के आधार पर न्यूनतम वेतन १५० रुपए तक पहुँच जाए। लेकिन एसे मजदूरों पर यह नहीं लागू होगा, जो कभी कभी या अस्थायी रुप से काम करते हैं : उदाहरण के लिए खेतिहर मजदूर जो कभी एक किसान या कभी दूसरे किसान के पास काम करते हैं या घरेलु काम करते हैं।

समिति के अनुसार खेतिहर मजदूरों के लिए न्यूनतम वेतन कानून की कोई आवश्यकता ही नहीं है ! क्योंकि, उनको कुछ महींनों में ही काम करने का मौका मिलता है और क्योंकि न्यूनतम वेतन लागू करने के लिए उनके पास कोई संगठन नहीं है इसलिए उनके लिए कोई न्यूनतम बेतन कानून बनाना बेकार है। उनके लिए इतना ही काफी है, कि सरकार ऐसी परिस्थितियां पैदा कर दे कि एक औसतन किसान या खेत मजदूर परिवार साल भर में १८०० रुपया कमा सके **लेकिन इसकी कोई कानूनी अहमीयत नहीं होगी।**

प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय खपत, और लघु उद्योगों में औसतन वेतन के आधार पर समिति ने न्यूनतम वेतन तय किया है। इससे भी ज्यादा ध्यान देने की बात यह है कि

न्यूनतम वेतन निर्धारित करने के लिए समिति ने एक मजदूर परिवार के लिए पंद्रहवी लेबर कनफेरेन्स द्वारा निर्धारित ३ की सख्या को घटा कर केवल १ से २ बीच की संख्या को ही " माना है। अपने आप में यह कितना घिनौना कदम है इसी बात से पता चलता है कि १६५८-५९ की इन्क्वारी के अनुसार देश के नौ प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों में एक औसतन मजदूर परिवार की संख्या ७ से लेकर २.५ के बीच में थी।

इसका नतीजा क्या होगा ? अगर इन प्रस्तावों को मान लिया जाए तो १९४८ से चली आ रही न्यूनतम वेतन की हर परिभाषा को रद्द कर देना पड़ेगा ! पहले तो १९४८ की फेयर वेजेस समिति, फिर १९५६ में पंद्रहवी लेबर कनफेरेन्स ही नहीं बल्कि सुप्रीम कोर्ट के फैसलों के अनुसार तक न्यूनतम वेतन **मजदूरों की कम से कम आवश्यकता पर अवश्य आधारित होना चाहिए।** इस कसौटी को लेने से न्यूनतम वेतन में कितना फर्क पड़ता है इसके हम कुछ उदाहरण देंगे। केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिए नियुक्त तृतीय पे कमिशन ने १९७२ में हिसाब लगाया था कि पंद्रहवी लेबर कॉनफेरेन्स के आधार पर न्यूनतम वेतन ३१४ रुपया होना चाहिए था। १९७५ के दामों के आधार पर यही संख्या ४९३ तक पहुँच चुकी थी। कमिशन ने उस कसौटी को भी कम करके हिसाब लगाया। तब भी न्यूनतक वेतन १९७५ के दामों के अनुसार ३०७ रुपया था। अगर भूतलिंगम समिति की बात मान ली जाए तो सात साल बाद न्यूनतम वेतन १९७५ के दाम के अनुसार भी १५० रुपए से कम हो जायगा !

यही नहीं भूतलिंगम समिति द्वारा प्रस्तुत आंकड़ो से ही सही देखा जा सकता है, कि लघु उद्योगों में भी आज न्यूनतम वेतन १०० रुपए से अधिक है १६ उद्योगों की सूची में ८ में न्यूनतम वेतन १५०-२०० रुपए के बीच में है और ६ उद्योगों २०० से अधिक है। इसका मतलब यही हुआ कि अगर भूतलिंगम साहब के हिसाब से ही मजदूरों को पैसा दिया जाय तो लघु उद्योगों के वेतनों में भी कटौती करनी पड़ेगी। लेकिन प्रस्तावों में वर्तमान वेतन स्तर कटौती की बात नहीं की गई है। यह प्रस्ताव भविष्य के लिए ही रखे गए हैं। इसका अर्थ यही है कि अगर यह न्यूनतम वेतन कानून लागू कर दिया जाए तो आने वाले समय में पूँजीपति वर्ग नए उद्योगों में शुरु से ही कम वेतन देगा और पुराने समझौतों का नवीनीकरण करते समय या तो वेतन कटौती की मांग करेगा या वेतन वृद्धि देने से इन्कार कर देगा। **अपने आप में यह वेतन जमा लागू करने के बराबर ही होगा।** यह बात इस चीज से और स्पष्ट हो जाती है कि समिति ने मांग की है, कि हर वेतन समझौता चार या पांच साल के लिए लागू हो। आज यह अवधी यूनियन और मालिक के बीच समझौते के आधार पर ही तय होती है।

समिति का कहना है कि उसके प्रस्तावों का मुख्य उद्देश्य यही कि "उच्च वेतन" पाने वाले मजदूरों के वेतन में धीमी रफ्तार से वृद्धि हो। इसके दो कारण दिए गए हैं। समिति के अनुसार तथाकथित 'उच्च वेतन" श्रेणी के मजदूर को "राष्ट्रीय विकास" के लिए "त्याग" करना चाहिए। फिर उनके वेतनों का स्तर कम वेतन मजदूरो के लिए एक उदाहरण बन गया है। यह दोनों ही आज के पूँजीवादी संकट की गहराई को दिखलाते हैं। अगर आज कुछ मजदूरों के वेतन औरों से अधिक है, तो इसीलिए कि आधुनिक उद्योगों ने अधिक मुनाफा कमाया है और मजदूरों ने अपनी संगठित ताकत से संघर्ष जीते हैं। और फिर जैसा हम आने वाले अंक में दिखाएंगे १९६५ के बाद से प्रायः सभी आधुनिक उद्योगों में भी असली वेतन गिरे हैं। इसके बावजूद आज अगर आम वेतन स्तर में कटौती की बात हो रही है, तो निश्चय ही यह कदम पूंजीपतियों के मुनाफे को बढ़ाने के लिए बिल्कुल ही आवश्यक हो गया है।

खेतिहर मजदूरों के लिए भी भूतलिंगम वेतन जमा ही करना चाहते हैं। १९६५ के बाद से गाँव में बढ़ते हुए वर्ग-संघर्ष को देख कर सरकार ने खेतिहर मजदूरों के लिए न्यूनतम वेतन कानून बनाए इनके अनुसार प्रायः हर जगह गाँव के श्रमिकों को १०० से लेकर के २०० रुपयों तक का न्यूनतम वेतन मिलना चाहिए। कुछ राज्यों में आज भी गाँवों में एक मजदूर १५० से ज्यादा ही कमा लेता है। - जैसे केरल और पंजाब में। इसलिए समिति का यह प्रस्ताव कि गाँव में न्यूनतम वेतन कानून हो ही नहीं आज ग्रामीण मजदूरों के उभरते संघर्ष को पुरी तरह से कुचल देने के लिए कानूनी आधार तैयार करने की कोशिश है।

बोनस

भूतलिंगम समिति के प्रस्तावों का मतलब आने वाले समय में वेतन जाम ही लागू करना नहीं है। छुपे रूप में वेतन कटौती का भी प्रस्ताव रखा गया है।

बोनस के विषय में सरकारी कर्मचारियों--पी एण्ड टी, रेलवे इत्यादी को साफ मनाही दे दी गई है। और मजदूरों के लिए कहा गया है कि बोनस की जगह उन्हें नौकरी के बाद "पेन्शन" के रूप में एक

निश्चित प्रतिशत दिया जाएगा। यह सब को मालूम है कि ८.३३% न्यूनतम बोनस के अलावा आज मजदूर अलग उद्योगों में अपनी ताकत के बल पर २०% से भी अधिक बोनस ले लेते हैं। महंगाई के खिलाफ लड़ने का यह एक आवश्यक तरीका बन गया है। इसी लिए महंगाई के साथ साथ बोनस की लड़ाई भी बढ़ी है। १९४८ और १९६१ के बीच में कुल हड़तालों में से केवल ७% ही बोनस के विषय को लेकर के हुयी थीं। १९६५ और १९७२ के बीच में जब महगाई और तेजी पर थी तो १५% हड़तालें बोनस के सवाल को लेकर हुयी थी इस मामले में मजदूर का दबाव कितना बढ़ चुका था यह इस बात से देखा जा सकता है कि १९७२-७४ में प्रायः सभी कंपनियों को न्यूनतम बोनस से अधिक पैसा देना पड़ा इन्हीं संघर्षों के दबाव में पहले ८.३३% बोनस कानून बना था, जिसे इमरजेन्सी का फायदा उठाकर कांग्रेस सरकार ने रद्द कर दिया। आज भूतलिगम समिति इससे भी आगे बढ़कर कर बोनस को खत्म करने की बात कर रही है। पेन्शन योजना लगू करने का तुक समझ में नहीं आता है, क्योंकि ग्रैच्युटी और प्रोविडेंट फंड योजना तो लागू है ही। इन्हीं में इतना घपला घोटाला हो रहा है कि एक तीसरी योजना शुरु करना मजदूरों को बेवकूफ बनाने का तरीका मात्र ही है।

महंगाई भत्ता

इससे पहले कि भूतलिगम समिति के प्रस्ताव को समझा जाए इस बात पर जोर देना जरूरी है, कि आज प्राय: हर उद्योग में मजदूरों की कुल आय का ३३% से ६०% तक हिस्सा महगाई भत्ते के रूप में मिलता है। शुरु में मालिकों को यही व्यवस्था सही लगी थी, क्योंकि बेसिक पे या मूल वेतन की तुलना में इस भत्ते में महंगाई के उतार चढ़ाव के साथ कटौती या बढ़ौती की संभावना थी। इसका नतीजा यह हुआ कि कई जगह महंगाई भत्ते का अनुपात औसतन बेसिक पे से भी ज्यादा हो गया है, जैसा कि कुछ उदाहरणों से समझा जा समता है :

	बेसिक पे	महगाई भत्ता	कुल वेतन
कानपुर (सूतो उद्योग)	३८	३७९	४१८
मद्रास ,, ,,	५५	३८१	४३६
पश्चिमबंगाल (जूट)	१६०	२७१	३७७
बिहार (चीनी उद्योग)	११०	२०९	३१९
हिन्दुस्तान मशिन टूल्स (इंजिनीयरिंग)	२००	२९५	४९५
केन्द्रीय सरकार का LDC क्लर्क	२१२	२२३	४३५
बैंक क्लर्क	२१२	४०५	६१७

इसके बावजूद यह भी याद रखना होगा कि अभी भी महंगाई की तुलना में १००% पैसा शायद ही कहीं मिलता है। अलग अलग जगह पर कई तरह के महंगाई भत्ते देने की व्यवस्था है जिनका वर्णन करना यहाँ संभव नहीं है आम तौर पर दो व्यवस्थाएं हैं —एक जिसमें कम तनख्वाह पाने वालों को वेतन के अनुपात में ज्यादा भत्ता मिलता है और दूसरी जिसमें सभी को महंगाई सुचांक के हर अक बढ़ने पर एक जैसा पैसा मिलता है।

पहली व्यवस्था का फायदा यह है कि निचली श्रेणियों को अधिक दर पर पैसा मिलता है। उदाहरण के लिए केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों में ३०० रूपया पाने वालो को महंगाई का ८७% और उपरली श्रेणी में ६३% मिलता है। आधे से अधिक राज्यों में भी यही व्यवस्था है। आज मजदूरों का ४०% से अधिक हिस्से पर इस प्रकार की "ग्रेड" श्रेणीबद्ध महंगाई भत्ते की व्यवस्था लागू होती है।

दूसरी व्यवस्था- फ्लैट रेट सिस्टम सभी श्रेणीयों को एक जैसा पैसा मिलता है। आज तक प्रायः सभी मजदूर संगठनों ने इसका विरोध किया है। एक समय सभी वेज बोर्डो ने भी इसे नहीं माना था। इसका कारण यही है कि क्योंकि ऊपरी श्रेणी को भी निचलों जैसा ही महंगाई भत्ता दिया जाता है तो हिसाब को कम करके आँका जाता है ताकि ज्यादा वेतन मिलने वालों को अधिक पैसा न मिले। भूतलिगम समिति का प्रस्ताव है कि सभी मजदूरों को १९६० के महंगाई सूचाँक के अनुसार हर अंक की बढ़ौती के लिए १.३० रुपया मिलना चाहिए। इसमें यह कहीं बताया ही नहीं गया है कि किस आधार पर यह संख्या निकाली गई है। सिर्फ इतना कहा गया है कि क्योंकि अधिकांश पब्लिक सेक्टर यूनिट में यह व्यवस्था है तो यह जायज है।

इसका मतलब सीधे-सीधे यही हुआ कि जिन मजदूरों को १.३० से ज्यादा मिल रहा है, उनके भत्ते में खुली कटौती की जाएगी। समिति के अनुसार २६० रुपया पाने वालों को २०० सूचाँक पर शत प्रतिशत महगाई मिलेगी। किस आधार पर यह हिसाब बनाया गया है यह जानना असम्भव है। मे. डी. ए. कमिशन के अनुसार २१० रुपया पाने वाले को १८५ के सूचांक पर १.३ रुपया प्रति अंक के हिसाब से केवल ६५% और ४०० रुपया पाने वालों को केवल ३२% ही महंगाई मिल सकती थी। यह याद रखना होगा कि १९७५ में ही महंगाई का सूचांक ३१४ हो गया था। महंगाई भत्ते में इतनी बड़ी कटौती करने का मतलब है कि सारे मजदूरों के वेतनों में भारी कमी कर देना।

इसके अलावा समिति ने मजदूरों के वेतन को कम करने के लिए और भी कई प्रस्ताव रखे हैं। महगाई सूचांक बनाने वाली चीजों के १६७१ की सूची में से की, शराब, सिगरेट आदि को काटने का प्रस्ताव रखा गया है। हर चार महीने बाद ही महगाई बढ़ाई जाएगी। पे स्केल की वजह से जो वेतन बढ़ौती होती है उसको घटाने के लिए पे स्केलस को छोटा करने की बात की गई है। यह आम वेतन कटौती का कार्यक्रम नहीं है तो और क्या है ?

मुनाफे और उच्च वेतन

यह दिखाने के लिए कि वह मजदूरों और पूँजीपतियों में वह कोई भेदभाव नहीं कर रही है समिति ने मुनाफे और उच्च वेतन पर तथाकथित नियंत्रण करने के लिए कुछ प्रस्ताव रखे हैं।

पर्याप्त लागत आकर्षित करने की मुनाफे की दर से २% या ३% कम "डिविडेंड" ही दिए जाने की अनुमति कंपनियों को दी जाएगी। यह रकम शेयर पूंजी और रिजर्व फंड दोनों के ही आधार पर निकाली जाएगी जबकि पहले "डिविडेन्ड" शेयर पूंजी के अनुपात में ही दी जाती थी। इसका मतलब है कि जहाँ पहले सौ में १०% मिलता था वहां अब १५० में ७% मिलेगा। पर्याप्त मुनाफे की दर क्या है इसे तय करने की कोई कसौटी नहीं रखी गई है।

समिति के अनुसार पूंजीपतियों की इन्कम पर प्रतिबंध लगाना तो दूर, ऐसा करने से "विकास" के लिए कोई प्रलोभन नहीं रह जाएगा ! इसलिए ऊंची आय पर से "सुपर टैक्स" हटाकर एक ऐसी योजना लागू करने की बात की गई है, जिसके अन्तर्गत एक सीमा के के बाद की आय को एक विशेष खाते में जमा किया जायेगा। इस पर सूद भी मिलेगा, और समय-समय पर सरकार या पूंजीपति इस पैसे को लागत के लिए इस्तेमाल भी कर सकते हैं। एक मालिक की मौत के बाद उसके वरिस के नाम यह पैसा हो जाएगा। यह सब पूँजीपतियों को फायदा पहुँचाएंगे न कि नुकसान ! कंपनियों के मैनेजरों के वेतन और सुविधाओं पर भी कुछ रोक-टोक लगाने की बात की गई है, लेकिन न्यूनतम और अधिकतम वेतनों में कोई अनुपात निर्धारित करना आवश्यक नहीं समझा गया है।

इन सब प्रस्तावों को लागू करने के लिए एक नई "ब्यूरो" बनाने की मांग समिति ने की है जो सभी वेतन समझौतों की निगरानी करेगी। इसमें सरकारी, ट्रेड यूनियन और मालिकों के प्रतिनिधि होंगे। अगर इसके प्रस्तावों को नहीं माना गया तो मामले को एक स्वतंत्र अदालत में भेजा जाएगा जिसका निर्णय सभी को मानना ही होगा। नए औद्योगिक अधिनियम के साथ जोड़कर देखा जाए तो यह पूरे यूनियन के अधिकार और कानून को बदलने की ही कोशिश है !

सभी ट्रेड यूनियनों ने समिति के प्रस्तावों पर बहस करने से इन्कार करके बहुत सही कदम उठाया है। लेकिन आने वाले समय के लिए यूनियनों में ही नहीं सभी मजदूरों में लड़ाकू एकता बनानी होगी, विशेषकर संगठित मजदूरों को असंगठित मजदूरों को अपने साथ लेना होगा। सरकार "ऊंचे" वेतन पाने वाले और "कम" वेतन पाने वाले मजदूरों में फूट डालकर सभी को दबाने की कोशिश करेगी।

असंगठित मजदूर जल्दी से जल्दी संगठित तभी हो सकते हैं जब संगठित मजदूरों के वामपंथी संगठन आपस में प्रतियोगिता छोड़कर, एक साथ पूरे मजदूर वर्ग को संगठित करने की कोशिश करे। उदाहरण के लिए फरीदाबाद में आज CITU और AITUC के बीच प्रतियोगिता चल रही है जबकि वहाँ का ६० % से ७०% मजदूर असंगठित है। इस प्रतियोगिता को रोकने के लिए यह यह आवश्यक है कि आज राष्ट्रीय स्तर पर एक न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर वामपंथी दलों का मोर्चा बने। इसको बनाने के लिए हर प्रकार से आन्दोलन करना आज सभी सचेत मजदूर कार्यकर्ताओं का फर्ज है।

———

जनता सरकार का प्रस्तावित नया श्रम कानून

साथियो ! होशियार !

आने वाले समय में राज्य का मजदूर आन्दोलन के प्रति क्या रुख होगा, यह जनता सरकार द्वारा प्रस्तावित श्रम कानूनों से जाहिर है। नए कानून पेश करते हुए श्रम मन्त्रालय ने एक टिप्पणी में यह स्पष्ट किया है कि यह कानून हड़ताल तथा तालाबंदी करने के अधिकार को मान्यता देता है पर कुशल मशीनरी के प्रबंध के द्वारा ये अधिकार अनावश्यक बन जाएंगे।

जनता सरकार ने दो तरह के श्रम कानून बनाने का सुझाव रखा है (१) अस्पतालों शिक्षा तथा शोध संस्थाओं और धर्मार्थ सस्थाओं के लिए (२) दूसरा जो कि केवल औद्योगिक मजदूरों के लिए लागू होगा। पहले कानून के अन्तर्गत तथा दूसरे में अनिवार्य सेवा नियम के अन्तर्गत आने वाले उद्योगों में, कोई भी पक्षकार—मालिक, मजदूर या सरकार किसी झगड़े को, विवाचन अथवा न्याय निर्णय के लिए भेज सकते हैं। इन "अनिवार्य सेवाओं" में कोई भी हड़ताल गैर कानूनी मानी जाएगी।

मौजूदा कानून के अन्तर्गत अनिवार्य सेवाओं में हड़ताल करने की जो सम्भावना थी वह अब पूरी तरह से खत्म कर दी जाएगी।

अन्य परिस्थितियों में भी मजदूर संघर्ष को बाधित करने की कोशिश की गई है। किसी भी उद्योग में ६० दिन तक समझौता सम्बन्धी बातचीत और ६० दिन तक समझौता सम्बन्धी कार्यवाही के बाद ही हड़ताल करने का फैसला लिया जा सकता है। इस कार्यवाही के विफल होने पर, हड़ताल तभी की जा सकती है जबकि ६० प्रतिशत मजदूर हड़ताल का समर्थन करें। इसके बाद भी १४ दिन की "स्ट्राइक नोटिस" की आवश्यकता है।

इन सब कानूनी फंदों के बाद हड़तालें जो जरूर कम हो सकती हैं। पर इसलिए नहीं कि हड़ताल वास्तव में "अनावश्यक" हो जाएगी। इतने लम्बे समय के बाद एक ओर तो मजदूरों का संघर्ष करने का जोश ठंडा पड़ जायेगा, दूसरी ओर मालिकों को अपनी दमन शक्ति बढ़ाने का मौका मिलेगा।

मालिकों को नए कानूनों से काफी दिलाना मिलेगा। पिछले कुछ महीनों में मजदूर आन्दोलन के तेज तथा लड़ाकू रुख को देखकर उद्योग मंडली बहुत भयभीत रही। पूंजी के आम संकट की परिस्थिति में मुनाफा स्तर बनाए रखने के लिए, पूंजीपतियों के लिए आज बोनस तथा वेतन वृद्धि इत्यादि की मांगें स्वीकार करना बहुत कठिन हो गया है। इसी कारण पूंजीपतियों के लिए यह अनिवार्य हो गया है कि वे मजदूर आन्दोलन पर सख्त प्रतिबन्ध लगाएं।

नवल टाटा का कहना है कि, "ले आफ" तथा छटनी पर एमरजेन्सी में लगाई गई पाबन्दियों को हटा लेना चाहिए। उनके विचार में, इसके द्वारा "गैर जिम्मेवार" हड़तालियों के खिलाफ कुछ कार्यवाही चलाई जा सकती है। नवल टाटा यह खुले आम कहते हैं कि "मजदूरों को यदि हड़ताल करने का अधिकार चाहिए तो मालिक अपने को छटती तथा तालाबन्दी के अधिकार से लैस रखना चाहेंगे।" (इकोनॉमिक टाइम्ज, १ मई, १९७८)।

मजदूरों के "बल प्रयोगी" नीतियों का जिक्र करते हुए विरेन शाह, यह सवाल उठाते हैं कि, उद्योग विवाद अधिनियम के अन्तर्गत, मजदूरों को दी गई सुरक्षा की क्या आज वास्तव में आवश्यकता है? बल्कि, नासमझ, अलोकतांत्रिक, तथा बल उपयोगी कर्मचारियों के खिलाफ, आज मालिकों को सुरक्षा की जरूरत है।" ('इकानॉमिक टाइम्ज' १ मई, १९७८ मौजूदा कानून उनके विचार में बहुत ही नरम हैं।

यह परेशानियां कुछ हद तक नए कानून द्वारा सुलझा दी जायेंगी। नए प्रस्तावों के अनुसार, संघर्ष के "बलप्रयोगी" तरीके जैसे कि घेराव आदि "अनुचित श्रम व्यवहार" के नाम से बाधित किए जायेंगे।

संनठन संबंधी नियम

प्रस्तावों का परिचय देते हुए श्रम मंत्रालय ने बताया है कि सभी संस्थाओं को संविधान में दिए गए, संगठित होने का अधिकार होगा। वास्तव में, अनायोजित क्षेत्रों में, तथा छोटे कारखानों और उद्योगों में इस अधिकार को खुल्लम-खुल्ला ठुकरा दिया जाता है।

संगठित मजदूरों में उद्योगों को ठेके के काम पर, या दिहाड़ी पर लगाकर इस अधिकार को छीन लिया जाता है। खेतिहर मजदूरों के अधिकारों को कभी शारीरिक बल के जोर पर, नहीं तो पुलिस अथवा स्थानीय नेताओं की सहायता द्वारा नकारा जाता है। नए सुझावों ने इन क्षेत्रों की समस्याओं को कोई ध्यान नहीं दिया है।

संगठन के रेजिस्ट्रेशन के लिए न्यूनतम सदस्यता बढ़ा दी गई है। संगठन में किसी यूनिट के कम से कम दस प्रतिशत मजदूर, और कुल संख्या में दस मजदूर शामिल होने चाहिए।

जहां यह उपबन्ध यूनियनों के विभाजन और छुटपुट संघठनों के बनने पर लाभदायक रोक लगा सकता है। वहीं यह असंघठित मजदूरों के संघठित होने के प्रयत्न में मजदूरों का दुश्मन भी हो सकता है।

नए सुझावों के अनुसार, यूनियन पदाधिकारियों के बीच बाहरी व्यक्तियों की संख्या में रोक लगायी। किसी एक यूनिट में दो, और किसी औद्योगिक संगठन की कार्यकारिणी समिति में ५० प्रतिशत सदस्य बाहरी व्यक्ति हो सकते हैं। इन में से कोई भी व्यक्ति एक एक समय में चार से अधिक यूनियनों में पद नहीं ले सकता है।

एक खतरनाक सुझाव यह रखा गया है कि, "गैर कानूनी हड़ताल" भड़काने के दोष पर संगठन के किसी पदाधिकारी को दो वर्ष तक हटाया जा सकता है। यदि कानून के अन्य उपबन्धों को देखा जाए, जिनके द्वारा कोई भी हड़ताल गैरकानूनी घोषित की जा सकती है, तो इस प्रस्ताव का दमनकारी रूप साफ हो जाएगा।

मान्यता प्राप्ति के लिए किसी भी संगठन के साथ कम से कम ६५ प्रतिशत मजदूरों का समर्थन अनिवार्य बनाने का प्रस्ताव रखा गया है। यदि किसी संगठन के पीछे ६५ से कम उदाहरण के लिए ५१ प्रतिशत मजदूर हों, तब उसे अन्य छोटी यूनियनों के साथ मिलकर समझौता वार्ता करनी पड़ेगी। किसी उद्योग में यदि एक से अधिक संगठन हो, पर ऐसा कोई संगठन न हो जिसका ५० प्रतिशत मजदूर समर्थन करते हों। तब, सौदा अधिकार "मालिकों द्वारा चुनी हुई संस्था को दिया जाएगा। यदि एक ही संघठन हो, तो ४० प्रतिशत समर्थन भी पर्याप्त माना जाएगा।

वर्तमान शासन काल: लाठियों से भी, गोलियाँ ज्यादा

बिहार (जनता पार्टी)

(१) ३ जुलाई, १९७७ और २२ जुलाई, १९ ७ के बीच में पाँच गरीब किसानों के नेताओं की पुलिस और जमींदारों ने हत्या की।

(२) २ सितम्बर १९७७ को बरहैया में नौ विद्यार्थियों को पुलिस ने मार डाला। यह बेलछी कांड के तुरत बाद ही हुआ था।

(३) ५ सितम्बर, १९७७ और ३० अप्रैल, १९७८ के बीच पुलिस ने चार जगह खेतिहर मजदूरों पर गोलियां चलाई जिसमें १६ लोग मारे गए और दो घायल हुए।

उत्तर प्रदेश (जनता पार्टी)

(१) १४ जुलाई, १९७७ को गाजीपुर जिले में एक गरीब किसान नेता भगवान जादव मरा हुआ पाया गया। उसके जिस्म पर ३१ घाव थे।

(२) अक्तूबर ३०, १९७७ और मार्च १३, १९७८ के बीच पुलिस ने नौ बार अलग-अलग जगहों पर विद्यार्थियों पर गोलियाँ चलाई जिसमें ७ छात्र मारे गये।

(३) ६ दिसम्बर, १९७७ को स्वदेशी मिल हत्याकाण्ड में पुलिस ने १४ मजदूरों को मारा।

(४) १३ अप्रैल, १९७८ पन्तनगर मजदूरों पर गोली वर्षा। आज तक इसमें मरने वालों की संख्या का पता नहीं मिला है।

(५) २३ अप्रैल और १ मई, १९७८ को जातवों पर आगरा में भयंकर हिंसक दमन। इसमें भी मृतकों की संख्या का पता नहीं है।

उड़ीसा (जनता पार्टी)

(१) १५ सितम्बर, १९७७ को बिप्रा शाह, वृन्दाबन के एक गरीब किसान को पुलिस ने बुरी तरह से पीटा।

(२) मार्च २५, १९७८ को राज्य असेम्बली के सामने शिक्षकों पर लाठी चार्ज।

मध्य प्रदेश (जनता पार्टी)

(१) ३ जून, १९७७ डिल्ली-राजहारा कोयला खदान मज़दूरों पर गोली वर्षा। इसमें १० मरे और ८६ घायल।

(२) दिसम्बर १८, १९७७ और २९ जनवरी १९७८ को दो जगह गोलीबारी जिसमें १ व्यक्ति मारा गया और ३ घायल हुए।

(३) ११ फरवरी और १३ अप्रैल १९७८ के बीच ३ जगह विद्यार्थियों पर लाठी चार्ज।

(४) ५ अप्रैल, १९७८ को बैलाडीला में मजदूरों पर गोली-कांड। सरकारी अनुमान अनुसार ११ मरे हैं। सभी इसे झूठ मानते हैं।

पंजाब (जनता पार्टी)

(१) एक खेतिहर मजदूर को पुलिस ने सितम्बर १९७७ को फतेहाबाद में मार-मार कर मौत के घाट उतार दिया।

(२) १-२ नवंम्बर, १९७७ को पुलिस ने अमृतसर, लुधियाना, भटिंडा, जलन्धर, संगरूर और फरीदाबाद में महंगाई और हरिजनों पर दमन के खिलाफ प्रदर्शन करने के लिए लाठी चार्ज किया।

(३) ११ मार्च १९७८ को राज्य कर्मचारियों के जुलूस पर लुधियाना में गोलाबारी।

हरियाणा (जनता पार्टी)

(१) १३ सितम्बर, १९७७ और १४ दिसम्बर, १९७७ को दो जगह विद्यार्थियों पर गोलाबारी।

(२) मोहम्मद गांव में एक पुलिस अफसर ने रामजीलाल नामक हरिजन को गोली से इसलिए मार दिया क्योंकि उसने घर में पुलिस को घुसने देने के पहले "सर्च वारंट" की माँग की थी।

दिल्ली (जनता पार्टी)

(१) अगस्त २८, १९७७ और सितम्बर ४, १९७७ को दो लोगों की पुलिस लॉक अप में पिटाई के कारण मौत।

(२) ६ सितम्बर, १९७७ और ११ मई, १९७८ को बिड़ला मिल और डी. सी. एम के मजदूरों पर लाठी चार्ज।

राजस्थान (जनता पार्टी)

(१) किसान जुलूस पर ६ मार्च १९७८ को आंसू गैस की बौछार।

(२) जयपुर जेल में बन्दियों पर २४ अप्रैल, १९७८ को आंसू गैस की बौछार।

महाराष्ट्र (कांग्रेस)

(१) २३ अक्तूबर १९७७ को बम्बई, मुलुन्द में ६९ मजदूर पुलिस की गोलीबारी में घायल।

(२) १६ नवम्बर, १९७७ को मैंजोगांव डॉक्स के मजदूरों पर गोलीबारी ५५मजदूर घायल।

(३) एस के एफ कम्पनी के मजदूरों पर लाठीचार्ज में ३७ मजदूर घायल – ४ जनवरी १९७७।

गुजरात (जनता पार्टी)

(१) ४ अक्तूबर १९७७, अहमदाबाद जिले में दो लोग पुलिस की गोलियों से मरे।

(२) १४ अक्तुबर १९७७, पुलिस की गोली से एक व्यक्ति मारा गया।

आँध्र प्रदेश (कांग्रेस इन्दिरा)

(१) ५ मई, १९७७ १०० नवयुवक और १२ लड़कियों को पुलिस के लाठीचार्ज से हैदराबाद में चोट लगी।

(२) मार्च १९७८ के आखिरी सप्ताह में पुलिस ने एक हरिजन नवयुवक को पीट कर मार डाला।

(३) मार्च ३०, १९७८ को पुलिस ने सिनेमा से लौटते हुए एक दम्पत्ति को गिरफ्तार करके बलत्कार किया और इसका विरोध करने पर पति को पीट-पीट कर मार डाला।

(४) जनता के विरोध करने पर पांच दिन लगातार हैदराबाद, वारंगल और कोटा गुदाम में पुलिस ने गोली चलाई। मृतकों की संख्या २० के करीब होगी।

(तमिलनाडु) (अन्ना दो. एम. के)

(१) १६ अप्रैल १६७७ को पुलिस ने "हरिजन" विद्यार्थियों को मद्रास में पीटा।

(२) २४ नवम्बर, १६७७ को पुलिस ने मद्रास में मछुआरों पर गोली चलाई जिसमें एक व्यक्ति मारा गया।

(३) ४ दिसम्बर १६७७ को हरिजन ग्रामीण मजदूरों के नेताओं को जमींदारों और पुलिस दोनों ने ही पीटा।

(४) ६ अप्रैल १६७८ को और उसके बाद पुलिस ने वेद सुन्दर, डिंडीगुल तथा अन्य जगहों पर गोली चलाई जिसमें नौ लोग मारे गए।

कर्नाटक (कांग्रेस इन्दिरा)

(१) जार्ज कुट्टी के बंगलोर में पुलिस ने २४ जुलाई १६७ को पुलिस लाक अप में पीट पीट कर मार डाला।

(२) वरुणा नहर योजना के मजदूरों पर २४ अक्तूबर १६७७ को गोली चलाई जिसमें दो लोग घायल हुए।

भोजपुर में वर्ग-संघर्ष

यह कहना गलत होगा कि हर जगह नक्सलपंथी आन्दोलन के साथ केवल मुट्ठी भर मध्यवर्गीय लोगों की ही सहानुभूति थी, या १६७० के बाद सभी जगह यह प्रायः समाप्त हो गया था। बिहार के भोजपुर जैसे जिले में नक्सलपंथी आन्दोलन १६७० के बाद और तेज ही नहीं हुआ, उसको गरीब और भूमिहीन किसानों की व्यापक सहानुभूति भी मिली। १६६५ के बाद से गरीब किसान आन्दोलन की उभरती लहर की पहली पहचान, कई जगह पर नक्सलवाद थी।

भोजपुर, पूरी तरह से एक खेतिहर समाज है और इस जिले के नौ शहरों में कारखाने के मजदूर नहीं हैं। मोटे तौर पर अगर देखा जाए तो यहां की आबादी का ४०% हिस्सा गरीब और भूमिहीन किसानों का है। यह सच है कि अधिकतर यह लोग निचली जातियों (यादव कोयरी और कुर्मी) और हरिजनों से ही आते हैं। लेकिन इनके आन्दोलन को जातियों का संघर्ष कहना ठीक नहीं होगा क्योंकि ऊंची जातियों राजपूत, ब्राह्मण और कायस्थों – में से आज कई लोग मध्यम और गरीब किसानों में गिने जायेंगे। यद्यपि नक्सलपंथी आन्दोलन के मुख्य नेता अधिकतर निचली जातियों से ही निकले हैं, इस आन्दोलन ने अपने सात वर्ष के इतिहास में जाति की जकड़ को ढीला बना दिया है। ऊंची जाति के गरीब तथा भूमिहीन किसान या तो आन्दोलन में हिस्सा लेने लगे हैं या उसके साथ सहानुभूति रखते हैं।

पुलिस रिकार्ड के अनुसार, नक्सलपंथी आन्दोलन, भोजपुर जिले के १६ में से नौ "ब्लाक" में फैला हुआ है। १० जुलाई १६७५ की एक सूचना के अनुसार नक्सलपंथियों के हाथ में निम्नलिखित गांव थे – सहर ३६ सन्देश २६, पीरो २३, तराई १५, जगदीशपुर ६, नावानगर ६, उदवन्तनगर ६ और बरहामपुर ५। पुलिस सुपरिटैन्डैन्ट का कहना है, कि यहां के ६० प्रतिशत खेतिहर मजदूर इन नक्सलवादियों का समर्थन करते हैं।

यहां पर मुख्य संघर्ष मजदूरों के वेतन, और किसान परिवार की बहू बेटियों के साथ बलात्कार करने का विरोध करने के लिए हुए हैं। जगदीश महत्तों के नेतृत्व में १६६६ में आन्दोलन खुले जन आन्दोलन के रूप में नहीं बल्कि गुप्त हमलों से ही शुरू हुआ था। उस साल अचानक किसी दिन एक न एक जमींदार के भूसे में आग लग जाती और किसी और दिन किसी की फसल कटी हुई पाई जाती। ३१ जनवरी, १८७१ को जमींदारों के दलाल शिवैजों सिंह एकवरी गांव के पास सोन नहर के करीब, मरा हुआ पाया गया। इसी साल तीन अन्य जमींदारों या उनके पिट्ठुओं को मार डाला गया।

६ दिसम्बर, १६७२ को मास्टर के नेतृत्व में एक बड़े राजपूत जमींदार को कुछ किसानों ने मिलकर मार डाला, क्योंकि वह

आए दिन किसी न किसी की बहूबेटी के साथ जोर-जबरदस्ती करता था। इस आन्दोलन के साथ प्रायः सभी गरीब किसानों, भूमिहीन मजदूरों और उनके परिवारो की सहानुभूति थी। इसलिए यह इतने दिन चल पाया।

२६ अप्रैल १९७३ को करीब सौ गरीब और भूमिहीन किसानों ने सहर पुलिस थाने के एक व्यापारी से चौरी गाँव में ४० मन अनाज छीना। इसके पहले दो साल तक चौरी में खेतिहर मजदूरों ने अपना वेतन बढ़ाने की लड़ाई लड़ी थी। इस संघर्ष के दौरान ही गणेशी दुसाध के अधीन स्थानीय नेतृत्व उभरा था। जमींदारों ने अनाज लूटने की खबर देकर पुलिस को कार्यवाही करने का मौका दिया। ६ मई को ५० सशस्त्र जवानों ने हरिजन टोले को घेर कर गणेशी दुसाध को गोली से उड़ा दिया। और तीन जनों को तो पुलिस वैन में ले जा कर तड़पा-तड़पा के मारा गया था। सरकारी प्रचार ने इसे "आत्मरक्षा में गोलाबारी" का नाम दिया।

अगर इस इलाके में संघर्ष ने गुप्त रुप लिया तो यह केवल दुस्साहसवाद नहीं था। इस जिले में सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों का असर होते हुए भी कानूनी संघर्ष के तरीके तीन-चार जगह ही असर कर पाए थे। यह याद रखना होगा कि इस इलाके में जमींदारों के पास १०० के करीब, घर की बनी बन्दूकें थीं। नक्सलपंथी आन्दोलन के शुरू होते ही कई हजार पुलिस फोर्स तैनात की गई। इस जिले के १६ ब्लाक में, ८००० बंदूकें आज मिलेंगी। और भोजपुर के जमींदारों की बन्दूकधारी फौज ५०,००० के करीब है

अप्रैल १९७३ के चौरी हत्याकांड के बाद जमींदारों की हिम्मत और बढ़ गई। उन्होंने मजदूरों को काम पर लगाने से इन्कार कर दिया। तब आसपास के गांव के खेतिहर मजदूरों ने चौरी के भूमिहीन मजदूरों के लिए अनाज भेजा। इस पर ८ जुलाई १९७३ को एक जमींदार ने इस बात पर एक महिला मजदूर के साथ बलात्कार किया कि, उसकी भैंस ने उसके गोदाम में रखा भूसा खा लिया था।

१९७४ में नक्सलपंथी आन्दोलन का तेजी से विकास हुआ और पुलिस दमन भी बहुत बढ़ गया। पुलिस ने कई गाँवों को घेर-घेर कर उनमें उपस्थित लड़ाकू मजदूरों और उनके नेताओं को चुन-चुन कर मारा।

तारीख	गाँव	थाना	मारे गए नेता का नाम
१४ जनवरी	पथ्थर	पीरो	रामेशवर अहीर
३ अप्रैल	छपरा	पीरो	असगु शिओ नारायन, लाल मोहन, विशनाथ
६ अप्रैल	आरा		हीरानन्द दुसाध
१५ मई	दुल्लमचक	सहर	गोपाल चमार, बच्चन अहीर
२६ जून	बहौरा		७ नक्सलपंथी और बुटान मुसहर
१७ अगस्त	बारूही	सहर	मुन्नी पासी
२६ नवम्बर	बाबू बुहान	सहर	३ नक्सली नेता
३ दिसम्बर	पिंजौरी	सन्देश	६ नक्सली नेता
३१ मार्च १९७६	छपरा	सहर	नारायण कवि

इन सब हमलों को 'नक्सलियों से मुठभेड़' का झूठा नाम दिया गया। राज्य सरकार ने जमींदारों को बन्दूक चलाने की विशेष ट्रेनिंग दी। कई बार उन्होंने अपने से हमला किया और "तथाकथित" या सचमुच के नक्सलियों को मनमाने ढंग से मारा।

भोजपुर में अब तक नक्सलपंथी आन्दोलन को कई धक्के लग चुके है। नेताओं की पहली कतार खत्म हो गई है। हर जगह — ५० गाँवों में— सशस्त्र पुलिस का डेरा लगा है। बर्बर दमन के सामने एक जगह पर सीमित आन्दोलन का रुक जाना तो स्वाभाविक ही था। यह बात और भी सच इसलिए है क्योंकि नक्सलपंथियों ने जमींदारों के सफाए के साथ-साथ दमन का विरोध करने के लिए जन संगठन या जन संघर्ष के व्यापक तरीके इस्तेमाल करने की कोशिश नहीं की।

अरुण सिन्हा के लेखों पर आधारित

तामिलनाडू "किसान" आन्दोलन

उत्तर व दक्षिण आरकोट, सालेम, मदुराई कोयम्बटूर – तामिलनाडु के इन चार पांच जिलों में, अप्रैल १६७८ से "किसान" आन्दोलन चल रहा है। बिजली शुल्क में कमी, ऋण चुकाने में सहायता खाद के दामों में कमी अनाज की सरकारी खरीद की कीमत में बढ़ौती—ये किसानों की कुछ प्रमुख मांगें रही हैं।

५ अप्रल

किसान आन्दोलन की शुरूआत -

बेलौर में १०० लोग पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए गए। इसका बदला लेने के लिए "किसानों" ने सड़क पर सब तरह का यातायात बंद कर दिया। बड़े-बड़े पेड़ों, ठेलों और मिट्टी की दीवारों से सड़क पर रोक लगा दी गई।

७ अप्रैल

सरकार ने स्थिति का सामना बल प्रयोग द्वारा किया। पुलिस ने 'टीयर गैस' चलाई। रिपोर्टों के अनुसार ३० लोग घायल हुए।

आन्दोलन की रफ्तार बढ़ी और इसने लड़ाकू रूप अपनाया। बस और ट्रकें जला दी गईं। कई जगह टेलीग्राफ तार काट दिए गए।

८ अप्रैल

गिरफ्तारों की सख्या २०७ तक पहुँच गई।

९ अप्रैल

पुलिस और आन्दोलन कर्ताओं के बीच टक्कर।

डिन्डुगल में पुलिस ने "ग्रामीण जनता" पर गोली चलायी। ८ व्यक्ति मारे गए।

डिन्डुगल के पास सनार पट्टी में फिर गोली चली।

११ अप्रैल

ओगदत्ता (उत्तरी आरकोट) में गोली चली।

१२ अप्रैल

किलापट्टा में गोली चलाई गई।

संघर्ष का लड़ाकू रूप जाहिर था। एन० जी० रामाचन्द्रन ने स्थिति को काबू में लाने के लिए फौज बुला ली। सात दिन के अन्दर पुलिस की गोलियों द्वारा लगभग ८ लोग मारे गए। ८००० लोग गिरफ्तार किए गए।

१४ अप्रैल

'कृषक संघ' की कार्य समिति की सभा में आन्दोलन जारी रखने का निर्णय लिया गया। सभा ने सरकारी दफ्तरों पर धरना, कर भुगतान का बहिष्कार और शहरों को अनाज, सब्जी और दूध की सप्लाई बंद करने का फैसला किया। उन्होंने वेदासोन्दर की घटना के विषय में हाई कोर्ट द्वारा जाँच की मांग उठाई।

२५ अप्रैल

सरकार के साथ बातचीत करने के लिए कृषक संघ धरना बंद करने को राजी हो गया। कर भुगतान का बहिष्कार चालू रहा।

प्रत्येक यूनिट पर विद्युत शुल्क को १६ पैसे से १४ पैसे तक घटाने की मांग सरकार ने स्वीकार कर ली। मीटर का किराया, ५ रु० से ४ रु० कर दिया गया। बकाया का भुगतान मासिक किश्तों में किया जाना था। ऋण की वसूली धीरे-धीरे होनी थी।

१६ मई

अधिकांश मांगें स्वीकार न होने के कारण कृषक संघ ने आन्दोलन चलाए रखने का फैसला लिया।

३१ मई

जिला कलक्टरी और तालुक दफ्तरों के सामने एक भारी धरना हुआ, जिसमें ६००० "किसानों" के साथ १०० महिलाए भी शामिल थीं। आन्दोलन कर्त्ताओं के विरुद्ध मुकदमें हटाए जाएं तथा कर्ज माफ किए जाएं—ये किसानों की प्रमुख मांगें थीं।

अपील

मजदूर साथियों से विशेष अपील है कि वे अपने जीवन के बारे में लेख या कविता लिखें या अपने राजनीतिक विचारों का 'फिलहाल' के माध्यम से प्रचार करें।

तमाम पाठकों से अपील है कि वे वार्षिक योगदान भेज कर 'फिलहाल' की मदद करें। कृप्या अपना योगदान केवल 'पोस्टल आॅर्डर' के द्वारा भेजें। हमारा पता है :—

फिलहाल समिति

पी० ओ० बोक्स ३६७, नई दिल्ली ११०००१

१५ जून
पूरे तमिलनाडू में जलूस और प्रदर्शन किए गए।

तामिलनाडू के आन्दोलन की चर्चा एक "किसान आन्दोलन के रूप में की जा रही है। उसकी मांगें किसानों की आम मांगों के रूप में देखी जा रही हैं। सी. पी. आई. के स्टेट यूनिटन ने इसी आधार पर आन्दोलन का समर्थन किया। गरीब किसानों की स्थिति को सुधारने के लिए वे संघर्ष में हिस्सा लेने को तैयार हैं।

क्या वास्तव में यह मांगें गरीब किसानों के हित में है ? इस आन्दोलन का असली चरित्र क्या है ?

बिजली शुल्क में कमी :

१९६० से १९७० के बीच "हरी क्रांति" के फलस्वरूप, ट्यूब-वैल और बिजली से चलने वाले पंपों का खूब व्यापक रूप में उपयोग होने लगा है। पूरे भारत के बिजली पंपों में से ४० प्रतिशत पम्प आज तामिलनाडू में हैं।

यह पम्प अधिकतर उन्हीं लोगों को दिए गए हैं जिनके पास १० एकड़ से ज्यादा जमीन हो। बहुत कम गरीब किसानों के पास बिजली पम्प हैं।

नए सिचाई साधनों के द्वारा आसानी से दो फसल और कभी-कभी तीन फसल भी पैदा की जा सकती है। यही नहीं, अक्सर सिंचित जमीन का वर्गीकरण सूखी जमीन के साथ किया जाता है जिसके कारण उनके मालिक-अर्थात् धनी किसानों को नाम मात्र का कर देना पड़ता है,

ई.पी. वीकली, वाल्यून ९, नं० ६, ७, और ८ यही धनी किसान काफी समय से बिजली शुल्क में कटौती की मांग उठाने में हैं। गरीब किसानों को कुछ रियायत देकर छोटे किसानों को कुछ लाभ मिलेगा। परन्तु आम तौर पर शुल्क में कटौती का फायदा केवल धनी किसान उठाएंगे।

रसायनिक खादों के दामों में कमी :

बिजली पम्प की तरह, इनका उपयोग भी अधिकतर पूंजीपति किसान अपने खेतों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए करते हैं।

सहकारी बैंकों से ऋण रद्द करने की मांग

बैंकों से ऋण अधिकतर किन किसानों को मिलता है ? एक जांच में दिखाया गया है कि, उत्तरी आरकोट में केन्द्रीय सहकारी बैंकों का ४५% बकाया धनी किसानों को चुकाना है। और रिपोर्टों से पता लगता है कि, १९७०-७१ के बीच धनी किसानों ने सिचाई इत्यादि के लिए जो कर्ज लिया था, उसे चुकाने के लिए वे बिल्कुल इच्छुक नहीं थे।

ऐसी परिस्थिति में ऋण रद्द करने की मांग का फायदा उन गरीब किसानों को नहीं मिल सकता, जो कि गरीबी के अलावा अक्सर सूखा अथवा बाढ़ इत्यादि के शिकार रहते हैं। इस संदर्भ में यह ध्यान में रखना चाहिए कि बैंकों द्वारा दिया गया कर्ज कुल ऋण का एक बहुत छोटा हिस्सा होता है। १९७६ में की गई एक जांच से पता लगता है कि तामिलनाडू के गाँवों में कुल ऋण में से केवल १५ प्रतिशत कर्ज बैंकों से लिया गया था। ८५ प्रतिशत ऋण जो कि गरीब किसान महाजनों से लिया करते हैं, वे बैंकों से लिए गए कर्ज को रद्द करने पर भी सही सलामत रहेंगे।

अनाज की सरकारी खरीद की कीमत में बढ़ौती :

अन्य मांगों की तरह यह भी धनी किसानों के हित में है।

छुटपुट किसानों से सरकार अनाज सीधे-सीधे नहीं खरीदती है। यातायात के साधन न होने के कारण, छोटे किसान अपना थोड़ा सा अनाज व्यापारियों को बेच देते हैं, जो कि उसे सरकार को बेचा करते हैं। अपने परिवार के खर्चे के बाद, गरीब किसान के पास बेचने के लिए बहुत ही कम मात्रा में अनाज बचता है। जब तक कि दलालों को हटाकर सरकार कोई ऐसी संस्था न बनाए, जिसको छोटे किसान सीधे अनाज बेच सकें, तब तक खरीद मूल्य में वृद्धि का फायदा छोटे किसानों को नहीं मिल सकता।

बिक्री किए गए अनाज का अधिकांश भाग – लगभग ८० प्रतिशत (एक जांच के अनुसार) धनी किसानों से आता है। गरीब किसानों की पैदावार इतनी कम है कि, अक्सर उन्हें अपने गुजारे के लिए चावल बाजार से खरीदना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में बाजार के दामों को बढ़ाने से उनका फायदा नहीं, बल्कि नुकसान होने की संभावना ज्यादा है।

भारत के अन्य क्षेत्रों की तरह तामिलनाडू के धनी किसानों का विकास औपनिवेशक काल से शुरू हो गया था। स्वतंत्रता के बाद से इनकी परिस्थिति में और उन्नति हुई। पूंजीवादी राज्य ने खाद तथा नए तरह के बीजों का प्रबन्ध करके, कम सूद पर ऋण तथा खरीद मूल्यों में वृद्धि करके, ग्रामीण पूंजी के विस्तार में मदद की।

पूंजीपतियों की मांगें जारी हैं। वे राज्य से और अधिक आर्थिक सहायता की मांग कर रहे हैं जिससे कि, उत्पादन खर्च में कमी (खाद के मूल्य में कमी, बिजली शुल्क में कटौती अथवा कर्ज को रद्द करना) के साथ-साथ बाजार के दामों में वृद्धि हो। इससे व्यक्तिगत मुनाफा बढ़ाया जा सकता है।

डी.एम.के. शासनकाल में इन पाँचों जिलों में, इससे कुछ कम लड़ाकू आन्दोलन (पर इन्हीं मांगों पर) चलाया था। उस समय १४ लोग गोली से मारे गए और २४,-२६ लोग गिरफ्तार किए गए थे।

धनी किसानों के नेतृत्व में, गरीब किसानों ने भी आन्दोलन में हिस्सा लिया—इसी आशा में कि उनकी परिस्थिति कुछ सुधर जाए। आन्दोलन में उठाई गई कुछ मांगों से शायद उनको नाम मात्र की मदद मिल सकती थी। परन्तु वास्तव में इस तरह के आन्दोलन का नतीजा एक ही निकल सकता है -- अर्थात वही किसान और शक्तिशाली बनेंगे जो कि, गरीब किसानों का शोषण करते आए हैं। १६७२ के समझौते से यह साफ है कि ऐसे संघर्ष से लाभ केवल धनी किसानों को मिल सकता है। **(एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इस समझौते में सी. पी. आई का भी हाथ रहा है।)**

इस संदर्भ में यह ध्यान में रखना चाहिए कि, किसानों की मांगों का और "किसान आन्दोलन" का एक सामान्य रूप से समर्थन करने से आन्दोलन का वास्तविक चरित्र छिपा रहता है— अर्थात आन्दोलन किस वर्ग के हित में है यह अस्पष्ट रहता है। तामिलनाडु में खेती का काम करने वालों में से ३० प्रतिशत जो कि खेतिहर मजदूर हैं। वे धनी किसानों द्वारा चलाए गए आन्दोलन से कुछ लाभ नहीं उठा सकते। गरीब किसानों की मांगे भी इन खेतिहर मजदूरों की मांगों से जुड़ी हुई हैं। क्योंकि इन्हें पेट पालने के लिए खेती के साथ-साथ मजदूरी भी करनी पड़ती है। थानजवूर के अलावा और किसी जिले में, वामपंथी पार्टियों ने इन वर्गों को अलग से वर्ग आधार पर संगठित करने की ओर ध्यान नहीं दिया है।

पंजाब में खेतिहर मजदूरों की दासता

● पंजाब में भी आदिवासियों की पशुओं की तरह बिक्री। ● जिला होशियारपुर में आदिवासी बेचनें वाली कम्पनियों की स्थापना। ● बिक्री में पुलिस भी भागीदार।

बिहारी आदिवासी आज भी पंजाब में पशुओं की तरह खरीदे और बेचे जा रहे हैं। यह सिलसिला कब और कैसे आरम्भ हुआ? आओ नौ-दस वर्ष पीछे की तरफ लौट चलें। बिहार के रांची जिले से बिरसा नामक आदमी घूमता-घूमता हुशियारपुर जिले के पैंचा नामक गांव में पहुँचता है। कुछ वर्ष पंजाब में काम करने के बाद जब उसने अपने परिवार को बिहार मिलने जाने की बात की तो अमीर किसानों ने वापसी पर अपने जैसे (नाम-मात्र वेतन पर खूब काम करने वाले) और बिहारी साथ में लाने के लिए कहा। और उसने ऐसा ही किया। यह देखकर एक दूसरे गांव के धनी किसान ने उसे सौ रुपए प्रति आदमी को किराया देकर और आदमी लाने के लिए वापिस भेज दिया। धीरे-धीरे यही बिरसा बिहार से आदमी लाने वाला दलाल बन गया। बिरसे का एक और भाई भी उसका सहयोगी बन गया। शुरू-शुरू में वह २० रुपए प्रति आदिवासी लेते थे। मांग बढ़ने से दलाली के रेट में भी वृद्धि होने लगी। शीघ्र ही बिहार से पंजाब आने के इच्छुक आदिवासी के लिए यह रेट तीस रुपए और पंजाबी किसान के यहां बेचने का रेट सौ रुपए तक हो गया।

बिहार में लगने वाले मेले अथवा गांवों में लगने वाले हाटों में ढ़ोल पीट कर आदिवासी इकट्ठे किए जाने लगे। अब बिहार में आदिवासी इकट्ठे करने वाले दलाल अलग, बिहार से पंजाब पहुंचाने वाले, और फिर पंजाब पहुँचे आदिवासियों को अलग-अलग स्थानों पर बेचने वाले दलाल पैदा हो गए। बिहारी दलाल जो आदिवासी को पंजाब आने के लिए तैयार करता था—उसे पांच रुपए मिलते थे। और मांग बढ़ने पर यही दलाल प्रति आदिवासी दस रुपए से पन्द्रह रुपए तक लेने लगे। बिहार से पंजाब लाने वाले दलाल प्रति आदिवासी एक सौ पच्चीस (१२५) से एक सौ पचास तक लेता था। इन दिनों यह रेट फिर बढ़ गए हैं। बिहारी दलाल २० से २५ तक, बिहार से पंजाब लाने वाला १५० से १७५ तक और पंजाब में बेचने वाला २५० से २७५ रुपए तक बटोर रहा है। काम के दिनों

में यह मोल-भाव और भी बढ़ जाता है। चौंकिए मत—इस तरह दलालों की शृंखला बन जाने का शिकार भी गरीब आदिवासी ही बनते हैं, क्योंकि इस तरह दलाली पर आया २५० से २७५ रुपये तक का खर्च भी आदिवासी के वेतन से ही काटा जाता है। और यह वेतन है केवल साठ रुपए से सत्तर रुपए महीना तक।

पंजाब पहुँचने वाले अधिकतर बिहारी आदिवासी राँची जिले से हैं। बिहार पंजाब पहुंचने का उनका खर्च (जो दलाल देता है) बहुत कम है। रांची से जालन्धर तक पहुँचने का खर्च सत्तर रुपए किराए के अतिरिक्त और कोई नहीं पड़ता। रास्ते में आदिवासियों को खाने के लिए चावल से बनी घटिया किस्म की खुराक दी जाती है।

पंजाब में इस अमानुषिक धंदे के लिए स्थापित कम्पनियों का विवरण इस प्रकार है:—हुशियारपुर जिले का टाँडा-डडमुड नामक कस्बा इसका मुख्य केन्द्र है। इन कम्पनियों में तो कुछ ने यहां तक कि बकायदा रजिस्टर तक लगाए हैं।

इन रजिस्टरों में बिहार से पंजाब पहुंचने वाले हर आदिवासी का नाम, स्थान और अब वह कहाँ काम करता है, आदि जानकारी लिखी जाती है। कुछ छोटी कंपनियां बड़ी कम्पनियों से आदिवासियों को कमीशन पर खरीद कर आगे किसानों के पास बेचने का काम करती हैं।

अब बिहार और पंजाब की पुलिस भी इस 'शुभ' काम में भागीदार बन गई है। जब बिहारी दलाल आदिवासियों को इकठ्ठा करके स्टेशन पर पहुंचाता है तो बिहार की पुलिस आ पहुंचती है। थोड़े-बहुत झगड़े के बाद पांच रुपए प्रति आदिवासी सौदा हो जाता है। इधर पंजाब में भी लुधियाना अथवा जालन्धर के स्टेशनों पर भी पंजाब-पुलिस इनकी प्रतीक्षा कर रही होती है। यहां भी अवसर-अनुसार सौदा पट जाता है।

इन आदिवासियों से पंजाबी किसान दिन-रात पशु की तरह काम लेते हैं। कई बार सारा वर्ष काम करवाने के बाद उनको बिना वेतन दिए भी भगा दिया जाता है। कई किसान इन्हें पशुओं की तरह डंडे से पीटते भी है। कई आदिवासी इस नारकीय जीवन से मुक्ति के लिए भाग भी निकलते है। पर "मूसा भागे मौत से, आगे मौत खड़ी" पजाबी दलाल अक्सर पांच-सात लठैतों की टोलियां लेकर टांड़ा, लुधियाना, जालन्धर आदि स्टेशनों पर घूमते रहते हैं। अगर कोई इधर से भागा आदिवासी या बिहार से पंजाब आने वाला अकेला आदिवासी इनकी दृष्टि में आ जाए तो यह उसे लट्ठ के बल पर वापिस ले जाते हैं और उसे २५० रुपए से ३०० रुपए तक बेच देते है। इस तरह की घटनाएं अक्सर घटित होती रहती हैं। इस तरह एक बार दलालों के जाल में फंस जाने वाला आदिवासी पंजाब की 'खुली जेल' से नहीं निकल सकता।

> **ऐसी खबर अखबारों में अकसर दिखती हैं।**
>
> **बिहार के पन्द्रह हरिजन दलित पंजाब के एक जागीरदार की कैद में :–**
>
> बिहार के पन्द्रह आदिवासियों एवं हरिजनों को नौकरी का झूठा प्रलोभन देकर पंजाब में लाया गया। इन दिनों वह हुशियारपुर जिले के एक गाँव 'चकबामु' में एक जागीरदार के यहाँ कैद हैं। यह जागीरदार उन से जबरदस्ती अपने खेतों में काम करवाता है और रात को कमरे में अन्दर बन्द करके ताला लगा देता है। यह आदिवासियों और हरिजन रांची जिले के बसन्तपुर और मदेरापुर गांव से हैं।
>
> **(१२ नवम्बर, १९७७ टाइम्स आफ इन्डिया)**

इन दिनों बिहार से टाँडा स्टेशन पहुंचने वाले ऐसे आदिवासियों की प्रति-दिन औसत १० से १५ तक है।

वीणा बत्रा

(पंजाबी मासिक पत्रिका—जैकारा—मई अंक पर आधारित)

———

मालिकों की गुण्डागर्दी : कुछ विचार

फरीदाबाद, गाजियाबाद और सोनीपत में गुण्डों का राज चालू है। "आटो पिन्स" फरीदाबाद में अलवर के २०-२५ बदमाशों को फैक्टरी की सुरक्षा सेना के रूप में रखा गया है। "आटो पिन्स" तथा सोनीपत के "इन्डियन डाइस केमिकल आरगनाइजेशन" में फरवरी में सुरक्षा सेना के गुण्डों द्वारा भारी दमन के खिलाफ काफी शोर हुआ। पर अवतार सिंह (फरीदाबाद औद्योगिक संघ के अध्यक्ष) और उनके गुण्डे मजदूरों के विरुद्ध डटे हुए हैं।

प्रश्न यह उठता है कि मजदूर संगठनों पर इस प्रकार का आक्रमण क्यों किया जा रहा है, मजदूरों को संगठित होने का न्यूनतम अधिकार देने से पूंजीपति क्यों कतरा रहे हैं ?

उत्तरी भारत के इस क्षेत्र में बसी हुई पूंजी का पिछला अनुभव कुछ हद तक इस बात का स्पष्टीकरण करता है। अधिकांश पूंजी यहां पश्चिम बंगाल से आई हैं। १९६७-१९७० के बीच, प० बंगाल में मजदूरों के लड़ाकू रुख को देखकर पूंजीपतियों ने उत्तरी भारत की ओर दौड़ लगाई। फरीदाबाद, गाजियाबाद इत्यादि में, असंघठित मजदूरों की प्राप्यता के कारण यह क्षेत्र पूंजी के लिए विशेष महत्त्व रखता था।

असंघठित मजदूरों पर शोषण प्रक्रिया बनाए रखने में सुविधा रही। बहुत से मजदूरों को न्यूनतम वेतन से कम पर लगाया गया, और बहुतों को ठेके के बाम पर लगाकर उनसे छुट्टी तथा भविष्य निधि, इत्यादि, सुविधाएं छीन ली गई हैं। जब मन चाहा इन अस्थायी मजदूरों को निकाला जा सकता है। इन परिस्थितियों के विरुद्ध जब मजदूरों ने आवाज उठाई तब पूंजीपतियों ने गुण्डों की धमकी से उन्हें दबाने की कोशिश की है।

फरीदाबाद या बंगाल में ही नहीं, बल्कि भारत के अन्य क्षेत्रों में और आम तौर से पिछड़े देशों में, पूंजी एक सीमित रूप तक ही मजदूर आन्दोलन को सह सकी है। तकनीकी पिछड़ेपन के कारण इन देशों में पूंजी की मुनाफाखोरी के लिए, वेतन स्तर को कम से कम रखना एक प्रमुख समस्या रही है। इसी कारण पश्चिम बंगाल में जब मजदूर आन्दोलन ने उग्र रूप लिया (१९६७-१९७०) तब बहुत से पूंजीपतियों ने अपना क्षेत्र बदल लिया। इसके विपरीत विकसित पूंजीवादी देशों में लड़ाकू यूनियनों के फैलाव से पूंजी के विकास में कोई खास बाधा नहीं पड़ी। वहां ट्रेड यूनियनों का विकास पूंजी के विकास के साथ जुड़ा हुआ है।

बंगाल के अनुभव के बाद फरीदाबाद, गाजियाबाद के पूंजीपति 'सी. टू' के फैलाव से घबराए हुए हैं। संघठित क्षेत्र के १.४ लाख मजदूरों में से आज एक तिहाई मजदूर 'सी. टू.' में दाखिल है।

फरीदाबाद की स्थिति में एक दूसरा प्रश्न यह उठता है कि, दमन के लिए विशेष रूप से गुण्डों का उपयोग क्यों किया जा रहा है ? क्या राज्य और राज्य फौज पूंजीपति की सुरक्षा के लिए पर्याप्त नहीं रह गए हैं, क्या पूंजीपति की निजी फौज (गुण्डों) का उपयोग जरूरी है ?

सभव है कि पुलिस, फौज आदि ने पूंजीपति की इच्छानुसार उनकी सुरक्षा न की हो। पिछले महीनों में अवतार सिंह और अन्य उद्योगपतियों ने सरकार के सामने हरियाणा क्षेत्र के लिए पर्याप्त संख्या में आरक्षित पुलिस और सशस्त्र पुलिस की मांग रखी है।

शासन कायम रखने के लिए, मजदूरों के लड़ाकूपन पर नियंत्रण रखना राज्य के लिए आवश्यक है। पर उन पर खुल्लम खुल्ला दमन अवतार सिंह के हाथों छोड़कर राज्य का पत्ता साफ रह सकता है। उत्तर प्रदेश में, कानपुर तथा पन्तनगर में राज्य पुलिस द्वारा मजदूरों पर दमन वहां की सरकार के लोकतांत्रिक प्रतिरूप का भंडाफोड़ किया। हरियाणा में इसकी अपेक्षा दमन अन्य तरह से हुआ है। एक तो गुण्डों के खिलाफ कोई सख्त कार्यवाही न चला कर और मजदूरों को जेल में बंद रख कर पूंजीपतियों को मदद मिली है। दूसरे, हरियाणा सरकार द्वारा प्रस्तावित नए श्रम कानून यहां के उभरते हुए आन्दोलन को कुचलने की कोशिश करते हैं। किसी हड़ताल को गैर कानूनी घोषित किए जाने के पन्द्रह दिन बाद तक यदि मजदूर काम पर न आए तो मालिकों को अन्य मजदूर भर्ती करने का अधिकार देने का सुझाव है। सरकार की राय में गैरकानूनी हड़ताल की अवधि में मजदूरों को वेतन नहीं मिलनी चाहिए।

फरीदाबाद में पूँजीपतियों की निजी सेना का आतंकवाद कुछ-कुछ बिहार के जमींदारों की निजी सेनाओं का आतंक जैसा लगता है। बिहार में भी इस आतंक के विरुद्ध राज्य ने कोई सीधा-सीधा हस्तक्षेप नहीं किया, बल्कि जमींदारों को सशस्त्र बनाने में मदद की। राज्य ने हस्तक्षेप तभी किया जब कि खेतिहर मजदूरों ने कोई विद्रोह किया, जैसे कि भोजपुर और छोन्दादानों में।

जमींदारों तथा पूंजीपतियों द्वारा गुण्डों के उपयोग में कुछ सामन्तवाद का प्रतीक देखते हैं। वास्तव में मजदूर संघठनों पर इस प्रकार का दमन सामन्तवाद नहीं, बल्कि जैसे कि पहले बताया है, वेतनों पर नियंत्रण करने के लिए आवश्यक हो गया है। बेकारों की असंख्य तादाद के कारण मजदूरों पर दमन और वेतन स्तरों पर रोक के बावजूद भी पूँजीपतियों को मजदूर आसानी से मिल जाते हैं।

———

फ्लोमोर मिल मालिक हैरिग इंडिया की राह पर

मेहनत कश भाईयों एवम् कामरेड

ब्रिटिश हुकूमत के चुंगल से हमारा देश सन् १९४७ में आजाद हो गया। आजादी तो हमें मिल गई और देशी पूंजीपति जो अंग्रेजी शासन में फड़फड़ा रहे थे, खुले आम लूट करने की होड़ में लग गये। सामन्त शाही उखड़ने लगी, वही पूँजीपति अब धुंआधार शोषण करने में जुट गये और अपने में भारी अधिकारी हो गये। उनके बगैर सरकार (जो एक मात्र उन्हीं की है) नहीं चल सकती। शासन उन्हीं की उंगली के इशारे पर घूमता है।

वह लोग मजदूरों को तो अपना निजी गुलाम बनाए हुए हैं। आम जनता को धोखा देकर, रूप बदल कर सरकारें चला रहे हैं। जैसे हम बे-सहारे और आम जनता पर खून की होलियां दिन-प्रति-दिन खेली जाती हैं।

सबका शोषण कर अपनी एक अलग मंजिल बनाते हैं और अपने ऐशो-आराम में सोये रहते हैं। जब मेहनत कशों के पेट की आवाज इनके कान तक जाती है, तो, अपने ऐशो-आराम में खलल पड़ते ही, तुरन्त खिन्न मन से पुलिस स्टेशन के लिए अपने रिसीवर के डायल घुमाते हैं और पुलिस वहां पहुंच कर उनके हिसाब से खून की बौछार करके धरती को लाल में रंग देते हैं।

मजदूरों की मांगें कितनी भी जायज हों, सरकार कहेगी घेराव किसी भी कीमत पर बर्दाश्त नहीं किया जायेगा। इनकी हर चाल बेनकाब है, लेकिन बड़ी बारीकी से दुनियां पर पर्दा डाल कर, नियम, कानून बना दिये है। दुनियां भर में प्रचार यह किया जाता है कि, कानून से बढ़कर कोई चीज नहीं है। कानून सर्वश्रेष्ठ है। कहते हैं हम मानवता वादी हैं। परंउन्हें दिखाई नहीं देता कि श्रमिकों का किस नीचता के साथ शोषण किया जाता है। फैक्ट्री के अन्दर कितने अमानवीय, खूंखार और बर्बरता बरतते हैं। यह केवल मेहनत कश वर्ग ही तो महसूस करता है। हम आप सबको अपनी ६.६.७८ से आज तक की घटना "फिलहाल" पत्र द्वारा सुना रहे है :—

हमारे कारखाने को स्थापित हुए, तीस वर्ष हो गये। इस कारखाने में पम्प बनाये जाते हैं। यह पम्प सीधे राज्य-सरकार को दिये जाते हैं, तथा विदेशों में भी सप्लाई किए जाते हैं। एक ही कारखाने के अन्दर, सरकार के कर से बचने के लिए, कई शाखाएं मालिक ने बना रखी हैं। फैक्ट्री के अन्दर मैनेजमैंट में एक काला गिरोह इस प्रकार काम करता है, कि, मिल मालिक और सरकार के बीच से अलग काले धंधे का काम करते हैं। जिसका सबूत मिल मालिक द्वारा जब्त 'यजदी' मोटर साइकिल मौजूद है। वह खजांची साहब चले गये, लेकिन पूरा गिरोह पकड़ में नहीं आया। असली बहुरुपिया यहां मौजूद हैं। फैक्टरी में शोषण बढ़ाकर मुनाफा पर्याप्त मात्रा में करते हैं। टेलीवीजन लगा हुआ है, तेल की ऐजेन्सी मौजूद है। लाखों रुपए के भवन खरीदे जा रहे हैं। इस फैक्टरी में यही लोग खुद यूनियन बनवाते रहे हैं और उन्हें मालिक से ठेका पर पैसा तय करके, यूनियन के मुख्य कार्यकर्ताओं को बेचते आये हैं। ऐसी ही यूनियन पिछले वर्ष सन् १९७७ में बनी थी, उनको भी इसी तरह पिछले वर्ष बेच दिया गया था। उन्हें इस बात का क्या मालूम था

कि, ऐसे भी यहां मजदूर है, जो न तो सरकार की चोरी को बर्दाश्त कर सकते है और न ही फैक्टरी चोरी को। जिस दिन वह नेता कहलाने वाले गद्दार मजदूर चले गये तो, मैनेजमैन्ट-हमलावर हम जैसे सभी श्रमिकों पर टूट पड़े। हिसाब सबकादेने के लिए नोटिस-बोर्ड लगा दिए तथा हिसाब लेने के लिए सभी मजदूरों को मजबूर करने में जुट गये।

ऐसा आतंक मजदूर देख न सके, और फिर साहस करके एकताबद्ध रहने का फैसला कर लिया, और मुझे अपना मुख्य प्रतिनिधि चुन लिया। उखड़े हुए झंडे को मैंने फिर लहराया। लाल झण्डे को अनामिका अंगुली से रक्त संचित करके धरती माँ की कसम खाई कि, शोषण के प्रति मैं सारा जीवन लड़ूंगा और इस पूंजीवादी व्यवस्था की कब्र पर समाजवादी व्यवस्था कायम करने के लिए अपनी आहुति संकलित कर दूंगा। ऐसी तो कोई स्थिति कभी नहीं आई है, किन्तु मालिक द्वारा हमें भी बहुत कुछ खरीदने की इच्छा रुपयों द्वारा जाहिर की गई। मेरे मौलिक स्वतंत्र-अधिकार को जानकर, रजिश मैनेजर (ओ० पी० शिव) मेरे से बहुत दुश्मनी करने लगे। मुझे फैक्टरी से निकालने के लिए हजारों तरह के यत्न करने लगे। सभी तरह की धमकियां दी गई - जान से मारने तक की बातें थी। मैं अपने को बचाने के लिए काफी सतर्क रहने लगा।

मेरी कोई भी गलती न पाने पर बहुत ही गहरी चाल मालिक ने चली, जो मेरे साथ ६।६।७८ को घटी। मेरे इन्चार्ज ए०के० रस्तोगी जू० सुपरवाइजर रवि को लेकर मेरी मशीन पर आए और आते ही उन्होंने कहा रवि को रुमाल दे दो। मैने कहा, किसका रूमाल मैं दे दूँ। इतनी बात ही हो रही थी कि, सभी मैनेजमेन्ट के आदमियों ने, सैक्योरिटी गार्ड सहित दो मिनट की ही देरी में, एकाएक मेरी मशीन को चारों तरफ से घेर लिया तथा मारने पीटने एव बाहर निकालने लगे। कुछ श्रमिकों के बहुत विरोध के बाद उन लोगों ने मुझे छोड़ा।

मैं थाने में उक्त घटना की रिपोर्ट लिखने के लिए जाने लगा, किन्तु मुझे गेट पास अथवा छुट्टी नहीं दी गई। शाम पांच बजे मैंने थाने जाकर रिपोर्ट लिखाई, जिसमें ३२३ की तहरीर हुई। अगले दिन फैक्टरी के खुलने पर १०।६।७८ को मुझे बिना कुछ दिये बरखास्त कर दिया गया। मजदूरों के बहुत निवेदन के बाद भी उन लोगों ने मुझे काम पर नहीं रखा। तब सभी श्रमिकों ने लच के बाद कहा, कि अगर मुझे ड्यूटी पर लेंगे तो हम काम करेंगे अन्यथा कोई काम पर नहीं जाएगा। तब हुआ यह कि सैक्योरिटी गार्डों की संख्या बढ़ाकर सबको काम दिया गया। उसी दिन से 'विकटिमाइजेशन' को समाप्त करने के लिए अभी तक हड़ताल शान्तिपूर्ण ढंग से सफलता पूर्वक चल रही है। यह खूंखार बनने वाले शोषक हमारे लिए गुन्डों का इन्तजाम बड़ी मुस्तैदी से कर रहे हैं, जैसे कि हमारी हड़ताल सफल न हो सके। किन्तु मैं इस बात को पूर्ण रूप से कहता हूँ कि, अगर कोई किस्म की हरकत उन्होंने की, तो उस हरकत के जिम्मेवार वह खुद होंगे।

इसलिए हम सभी मेहनतकश भाईयों एवं कामरेड साथियों से अनुरोध करते हैं कि, दुनियां भर के सारे मजदूर एक जुट होकर पूंजीवादी व्यवस्था को ही क्यों न दफना दें - जो न रहे बांस न बजे बांसुरी। इस संकट (शोषण) से मुक्ती पानी है तो सभी मेहनतकश साथी कामरेड का रूप धारण कर लें, और एक दूसरे से सचार व्यवस्था द्वारा सम्बन्ध कायम कर, एक दूसरे की मानसिक और आर्थिक मदद करें। मुझे उम्मीद है, हम सब भाईयों में समय परिवर्तन के साथ इन्सानी जागृति और वर्ग चेतना बढ़ रही है और हम एक दूसरे की मदद करने में कोई कमी नहीं बरतेंगे। मजदूर वर्ग ही क्रान्तिकारी वर्ग है जो न कभी दबा है और न कभी दबेगा।

इस देश के गरीबों की आजादियां न पूछ,
है अख्तियार इतना कि वे अख्तियार है।
नजदीक आता जाता है ऐ दीप इन्कलाब,
हम क्यों कहें कि अहले वतन बेकरार है।

कम्युनिष्ट अपने विचारों और उद्देश्यों को छिपाना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। वे खुले आम ऐलान करते हैं, कि उनके लक्ष्य पूरी वेर्तमान सामाजिक व्यवस्था को बल-पूर्वक उलटन से ही सिद्ध किए जा सकते हैं। कम्युनिष्ट क्रान्ति के भय से शासक वर्ग कांपा करे। सर्वहारा वर्ग के पास खोने के लिये अपनी बेड़ियों के सिवा कुछ नहीं, जीतने के लिए सारी दुनियां है।

दुनियाँ भर के मजदूरों एक हो।

सुभाष सिंह
सेक्रैटरी
फ्लोमोर प्रा० लि० इन्जिनियरिंग कामगार
यूनियन मोहन नगर गाजियाबाद (उ०प्र०)

नोट :—आर्थिक सहायता आप हमारी हड़ताल सफल बनाने हेतु देना चाहते हैं तो, यहां आकर भी दे सकते हैं और मनी-आर्डर द्वारा भी।

विश्वास करें कि मैं हूँ आप सब का स्नेही मित्र।
हर कदम हर चाल आपके साथ है।

———

पिछड़ा कौन ? आरक्षण किसलिए ?

पिछले कुछ महीनों से बिहार में जातीय तनाव तेजी से बढ़ रहे हैं। सरकार ने पिछड़ी जातियों के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण की माँग को स्वीकार कर लिया है। बिहार के बाहर कुछ लोगों में यह धारणा है कि यह कदम हरिजनों और आदिवासियों के हित में है। यह गलत है। यह नया कदम हरिजनों और आदिवासियों के लिए नहीं बल्कि "पिछड़ी जातियों" के लिए २६ प्रतिशत सरकारी नौकरियों के आरक्षण के लिए उठाया गया है। ऊंची जातियों के लोग जोर-शोर से इसका विरोध कर रहे हैं और इस परस्पर द्वन्द्व में कई-एक लोग घायल हुए हैं और कुछ मरे भी हैं। पूरा बिहार आज आरक्षण के सवाल पर विभाजित हो गया है।

आरक्षण किसलिए ? क्या इससे शोषित वर्गों को कोई लाभ पहुँचेगा ?

बिहार की परिस्थितियों पर गौर करने से पता लगता है कि "पिछड़ी जाति" का ढ़ोल पीटते हुए कुछ लोग अपने स्वार्थ को आगे बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं। एक तरफ तो पिछड़ी जातियों के नाम पर ऐसे लोग सरकार से विशेष सुविधाएं माँग रहे हैं और दूसरी ओर ऐसे ही "महन्थ" अपनी ही जाति के निम्न वर्ग के लोगों का शोषण कर रहे हैं। बेलछी में कुरमी खेतिहर मजदूरों पर अत्याचार करने वाला महावीर महतो धनी तो जरूर था लेकिन था कुरमी जाति का ही !

लेकिन फिर भी समाज के आधारभूत द्वन्द के विषय—वर्ग विभेद—की जगह जाति के सवाल को प्रधानता दी जा रही है। क्यों ?

स्पष्ट है कि हरिजन-आदिवासी और अन्य खेतिहर मजदूरों और गरीब किसानों पर बढ़ रहे अत्याचारो पर से ध्यान हटाने के लिए ही यह साजिश की जा रही है। और इसका कारण यह भी है कि इन अत्याचारों में एक बड़ा हाथ "पिछड़ी जातियों" के धनी किसानों का है। धरमपुरा, बेलछी, पथड्डा, गोपालपुरा, कारगाहार, छौंड़ादानों आदि तो इतिहास के पृष्ठों में शर्मनाक वारदात बन कर दर्ज हो ही गए हैं। इस संदर्भ में यह आश्चर्य-जनक नहीं है कि पटना के सड़कों पर आरक्षण के पक्ष में जुलूस निकालते हुए "पिछड़ी जातियों" के नेताओं ने बेलछी हत्याकांड में अभियुक्तों, विशेषकर कुरमी धनी किसान इन्द्रदेव चौधरी, को रिहा करने के नारे लगा रहे थे।

लेकिन ऐसा क्यों है कि कल तक रुपसपुर-चंदवा, चवरी, हरनौत आदि में जिस प्रकार का अत्याचार "ऊंची जातियों" के भू-स्वामी करते थे आज वैसे ही अत्याचार "पिछड़ी जातियों" वाले कर रहे हैं ?

इसका कारण यह है कि शोषक वर्ग में केवल ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ और भूमिहार ही नहीं हैं बल्कि "पिछड़ी जातियों" में गिने जाने वाले यादव, कुरमी और कोयरी धनी किसान भी हैं। इन जातियों में धनी काश्तकार श्रेणी का विकास ब्रिटिश राज के जमाने से ही हो रहा था। १६५० के बाद, जमींदारी उन्मूलन कानून बनाने से और सरकार की अन्य पूंजीवादी नीतियों के सहारे यह "पिछड़ी जातियों" के "अग्रगामी" धनी किसानों का वर्ग और मजबूत हो गया। जमीन्दारी खत्म होने तक इस वर्ग का मौलिक विरोध ऊची जातियों के सामन्ती जमीन्दारों से था। उसके बाद इनका विरोध खेतिहर मजदूरों और गरीब किसानों से हो गया। ऐसे धनी किसान सामन्ती नहीं हैं। लेकिन इनकी समृद्धि का आधार भी शोषण ही है—पूंजीवादी तरीके का शोषण। फलस्वरूप इन्होंने हरिजनों—आदिवासियों और अन्य खेतिहर मजदूरों और गरीब किसानों का क्रूर शोषण जारी रखा।

अपने आर्थिक अधिपत्य को स्थापित करने के बाद यह स्वाभाविक था कि ये समाज और सरकार के अन्य इलाकों पर भी अपना प्रभाव जमाने की कोशिश करें। विधान सभा आदि के चुनावों में १६६७ से इनकी जीत बढ़ती मात्रा में होने लगी। हाल में हुए पंचायत चुनावों पर भी यही छाए रहे। और अब, क्योंकि राज सत्ता एक तरह से इनके हाथ में है, यह सरकारी पदों पर—नौकरशाही कुर्सियों पर चढ़ बैठने के लिए अपने लिए २६ प्रतिशत जगहों के आरक्षण को व्यवस्था की है।

लेकिन यह आरक्षण किसके लिए है ?

"पिछड़ी जातियों" के समूह में अनेक जातियां हैं लेकिन उनकी प्रगति से सिर्फ तीन जातियों के कुछ गिने-चुने लोगों को लाभ पहुँचा है। चाहे विधान सभा के पद हों या सदस्यता, चाहे पंचायतों पर प्रभुत्व हो या सरकारी नौकरियों पर अधिपत्य, सिर्फ यादव, कुरमी और कोयरी जाति के कुछेक लोगों ने ही अपने लिए अधिकांश फ़ायदा उठाया है और बाकी "पिछड़ी जातियों" के लोग आज भी

पिछड़े हुए ही हैं। इस आरक्षण का फायदा भी वही धनी किसान उठा सकते हैं जो अपने बच्चों को उच्च शिक्षा देने का खर्च उठाने में सक्षम हैं। पिछड़ी जातियों में अधिकतर लोग जो गरीब किसान, कारीगर या खेतिहर भूमिहीन मजदूर हैं क्या अपने बच्चों को मैट्रिक तक भी पढ़ा सकते हैं ? आरक्षण उनके लिए कोई माने नहीं रखता जिनके पास पैसा नहीं है। हरिजन-आदिवासियों के लिए भी तो २४ प्रतिशत सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था कई-एक सालों से है। क्या उससे उनकी गरीबी मिट गई ? जिनके लिए २४ प्रतिशत नौकरियां आरक्षित हैं उनके बच्चों में मुश्किल से २०-२५ प्रतिशत पाँचवी कक्षा से आगे पढ़ पाते हैं। उन्हें नौकरी क्या मिलेगी !

स्पष्ट है कि "पिछड़ी जातियों" के नाम पर धनी किसानों के एक हिस्से ने नौकरियों में २६ प्रतिशत आरक्षण के लिए, अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए, बलवा किया है। और इस बलवे में सभी राजनैतिक दल फंस गए है और पूरा बिहार त्रस्त हो गया है। ऊंची जाति वाले अपने बर्तमान की रक्षा कर रहे हैं, पिछड़ी जातियों के धनिक अपने भविष्य को सुरक्षित कर रहे हैं और मर रहे हैं गरीब - चाहे वह ऊंची जाति के हों या पिछड़ी जाति के, हरिजन हों या आदिवासी।

सरकार ने भी यह कदम सोच-समझ कर बिहार में बढ़ते वर्ग संघर्ष की ओर से ध्यान हटाने के लिए उठाया है। आखिर समूचे उत्तर भारत के कृषि क्षेत्र में पिछड़ी जातियों के धनी किसानों का (आधिपत्य) हो ही गया है और राजनीतिक क्षेत्र में पूंजीवादी किसानों क संगठन भारतीय लोक दल, ने छाने की कोशिश की है। बिहार की सरकार का सामाजिक आधार यही धनी किसान वर्ग है और बिहार के मुख्य मंत्री कर्पूरी ठाकुर भारतीय लोकदल का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। स्वाभाविक है कि यह दल अपने समर्थकों के हित की रक्षा करेगा।

बाकी राजनीतिक दल भी इस आरक्षण के दलदल में फंस गए हैं। ऊंची जातियों का प्रतिनिधित्व करने वाले दल-संगठन कांग्रेस, लिमये-जोशी-तिवारी समाजवादी, तरह-तरह के कांग्रेसी आदि आरक्षण का विरोध कर रहे हैं। उनके सर्वोच्च नेता लोक नायक जयप्रकाश आज जूते खा रहे हैं। शहरी व्यापारियों का प्रतिनिधित्व करने वाला जनसंघ भी आरक्षण का बिरोध कर रहा है। दूसरी तरफ अपने को वाम पंथी कहने वाले दोनों संसदीय कम्युनिस्ट पार्टी – सी.पी.आई और सी.पी.आई.एम.—जातीयता की बहती गंगा में हाथ धोने के लिए आरक्षण का समर्थन कर रहे हैं। वर्ग को तिलांजलि देकर जाति को उन्होंने अपनाया है और सिद्धान्त-हीन अवसरवाद का ज्वलन्त उदाहरण पेश किया है।

ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि वर्ग विश्लेषण की पूर्ण स्थापित किया जाय और जाति पर आधारित सामाजिक कुरीतियों को मूलत: खत्म किया जाय। आखिरकार, समाज में दो ही वर्ग हैं, दो ही जातियां शोषक-शोषित—और फैसला इन्हीं के बीच होगा।

————
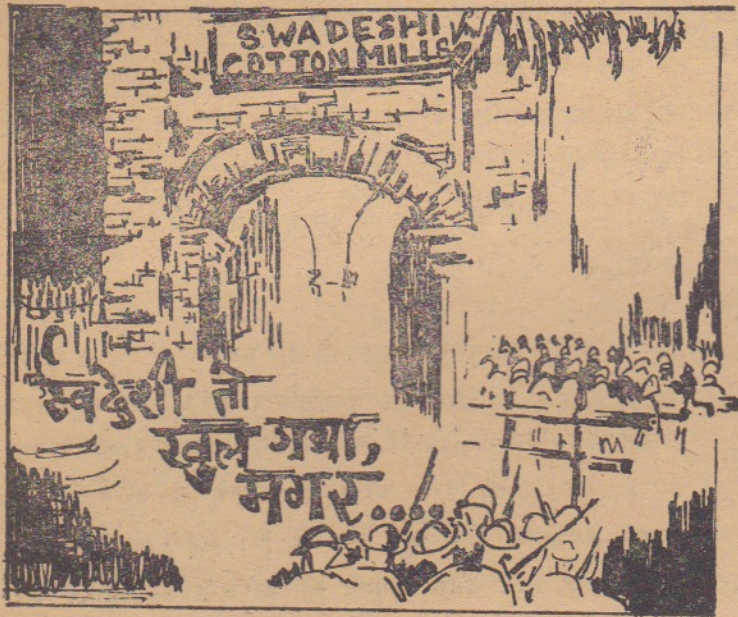
मजदूरों की ऐतिहासिक कुरबानी एवं संघर्ष के बाद उनकी जीत हुई, सरकार को झुकना ही पड़ा और मिल को सरकारी नियंत्रण में लेकर फिर से चालू करना पड़ा। जिस मिल में ६ महीने के पहिले यह स्थिति थी कि मजदूरों को ७-७ पनद्रहिया की तनख्वाह नहीं मिलती थी और माँगने पर उन्हें गोली खानी पड़ी, वहीं आज यह हाल है कि मालिक जयपुररिया स्वयं मिल से बाहर हैं।

इतनी बड़ी लड़ाई स्वयं मजदूरों ने अपना एक संयुक्त मोर्चा बना कर लड़ी थी। यही मोर्चा मिल खुलने के बाद भी मजदूरों की समस्याओं के लिए संघर्ष कर रहा है। समस्यायें बहुत हैं एवं विपक्ष की शक्तियां बहुत अधिक ताकतवर। फिर भी पिछली लड़ाई एव बिजय ने मजदूरों में स्वयं के प्रति एवं अपने मोर्चे के प्रति विश्वास जगा दिया है।

इतना तो मजदूर अभी ही समझने लगा है कि मिल मालिक हो या एन. टी. सी., मजदूर का शोषण उसी तरह होता रहेगा। कानपुर के नौ सूती मिलों में से पाँच आजकल सरकारी नियंत्रण में चल रहे हैं और शेष चार निजी पूँजीपतियों के द्वारा चलाए जा रहे हैं।

पिछले दिनों मिल के पावर हाउस में अचानक आग लग गई। मजदूरों को दो-तीन तक काम भी नहीं मिल पाया। मजदूरों द्वारा सरकार से की गई रिपोर्ट में कहा गया है कि यह एक सुनियोजित षडयंत्र था। मजदूरों को बकाया देनदारियों से संबंधित कागजों को भी नष्ट करने की कोशिश की गई।

जहाँ एक ओर यह हाल है, वहीं दूसरी ओर तमाम अस्थाई मजदूरों को अभी भी काम पर नहीं लिया जा रहा है। तमाम मशीनें जानबूझ कर बंद रखी जा रही हैं ताकि उत्पादन न बढ़ने पाये और उत्पादन की इस क्षिति का दोष मजदूरों के सिर मढ़ा जा रहा है। असल में स्थिति यह है कि एन.टी.सी. के द्वारा मिल में भेजे गये तमाम अधिकारियों एवं मिल में पहले से काम कर रहे अनेक अफसरों में बहुत से ऐसे हैं जिन्हें राष्ट्रीय हित की अथवा मजदूरों के भले की चिन्ता कम है, पुराने मालिक जयपुरिया की चिंता ज्यादा है। मजदूर महसूस कर रहे है कि जब तक ऐसे अधिकारियों को निकाल बाहर नहीं किया जाता है मिल में काम की हालत सुधर नहीं सकेगी।

दूसरी ओर कुछ ऐसे भी कारण हैं जिनकी वजह से इस बात का खतरा महसूस होता है कि मजदूरों की यह ऐतिहासिक एकता कहीं बिखर न जाय। आज भी मजदूरों का एक बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा है जो अपने सवालों पर मोर्चे की गतिविधियों में कोई दिलचस्पी नहीं लेता। इनकी इस निष्क्रियता के कारण ही इस बात का खतरा बढ़ जाता है कि कहीं वे कार्यकर्त्ता जो आज लड़ाकू तरह से, ईमानदारी से काम कर रहे हैं, कल पुराने नेताओं के भ्रष्ट एवं मजदूर वर्गविरोधी रास्ते पर न चल दें। मोर्चे के भीतर आज जो जनवाद कायम है उसके लिए ही खतरा न पैदा हो जाय। फिर भी लोगों में उत्साह बढ़ रहा है। धीरे-धीरे वे अधिक सक्रिय हो रहे हैं। मोर्चे के गतिविधियों में वे हिस्सा लेते हैं (जैसा कि पुराने ट्रेड यूनियन संगठनों में नहीं होता था)। अगले दो महीने में कारखाने में जनबादी ढंग से चुनाब कराके एक नई कार्यकारिणी बनाने की तैयारी की जा रही है।

पुराने नेतागण और उनके संगठन चाहे वे दक्षिण पंथी हों अथवा बामपंथी, मजदूरों की इस एकता एवं सक्रियता के आगे घबरा उठे हे और भीतर-भीतर इसे तोड़ने की कोशिश भी करते हैं।

स्वदेशी मिल के मजदूर साथी एक ही कारखानें में पचास-पचास यूनियनों की व्यर्थता को अच्छी तरह समझ चुके हैं एवं वे अब यह सब वर्दाश्त करने को तैयार नहीं है। नेताओं से कह दिया गया है कि अगर आप मजदूरों के हित में एक नहीं हो सकते है तो मिल के गेट पर, मजदूरों के बीच में उनके लिए कोई स्थान नहीं है।

एक और विशेष बात यह है कि जहां एक ओर इस प्रकार के मजदूरों के स्तर पर बने हुए जनवादी मोर्चों को दूसरी मिलों में फैलाने की न केवल आवश्यकताओं को महसूस किया जा रहा है बल्कि उसके लिए प्रयत्न भी हो रहे हैं, बहीं दूसरी ओर स्वदेशी का मजदूर

दूसरे मिल में संघर्षरत अपने मजदूर भाइयों की लड़ाई में भी पूरी तरह शामिल हो रहा है। पड़ोस के कैलाश मिल में स्वदेशी के साथी भूख हड़ताल पर बैठ रहे हैं, चंदा दे रहे हैं। इससे पता लगता है कि कानपुर स्तर पर संयुक्त मोर्चा बनाने की आवश्यकता को मजदूर अब महसूस कर रहे हैं।

जी० पी०—
संयुक्त मोर्चा के एक
सदस्य

इनके लिए
जैसा कांग्रेस राज,
वैसा ही जनता राज

कानपुर का कैलाश मिल पिछले २१ महीने से बंद है। यह एक गैर कानूनी तालाबंदी है। मालिकों ने पहले तो इमरजेन्सी का लाभ उठाकर मिल के लड़ाकू ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ताओं को निकाला फिर समूचे मिल को ही बंद कर दिया। उनकी मंशा थी कि इस सूती मिल को चलाने के बजाय कृतिम धागे से बनने वाले कपड़े का कारखाना लगाया जाय जिसमें थोड़े से लोगों को ही रोजी देकर बहुत अधिक मुनाफ़ा कमाया जा सके। इस संदर्भ में यह याद रखने योग्य है कि यह मिल कोई घाटे में चलने वाला कारखाना नहीं था। परन्तु अन्धा-धुन्ध मुनाफ़ा कमाने की भूख ने ऐसे हालात पैदा कर दिये कि मिल ही बंद हो गया।

आज दो हजार से भी अधिक मजदूर बेकारी एवं भुखमरी के शिकार हो रहे हैं। जबरन लादी गई इन स्थितियों के कारण तमाम मजदूर परिवार भूख से मर चुके हैं, कई लोग तो पागल तक हो गये हैं, न जाने कितने बच्चों की पढ़ाई तक छूट गई है, न जाने कितनी सयानी लड़कियों की तय शुदा शादियाँ तक नहीं हो सकी हैं और न जाने कितने परिवार कर्ज में डूब गये हैं—सूद खोर उन्हें नोचने में लगे हैं।

ऐसी स्थिति में, जब अब तक लिखे गये तमाम पत्रों का, ज्ञापनों का, मीटिंगों का एवं इतनी लम्बी प्रतीक्षा का कोई हल नहीं निकला, तो मजदूरों के सामने केवल एक रास्ता रह गया – आन्दोलन और संघर्ष का रास्ता। दूसरा रास्ता बचता है, घुट-घुट कर मर जाने का। मजदूरों ने स्वयं को इस बार पुराने ट्रेड यूनियन तरीके से अलग हटकर नये सिरे से नीचे के स्तर से संगठित होकर संघर्ष का ऐलान कर दिया है। यह आन्दोलन "कैलाश मिल मजदूर संयुक्त मोर्चा" के तत्वावधान में चलाया जा रहा है जिसमें सभी संघठनों से संबद्ध मजदूरों ने अपने को एक मंच पर संगठित किया है एवं आन्दोलन की सारी बागडोर स्वयं मजदूरों के हाथ में है।

विशेष बात यह है कैलाश मिल को खुलवाने की इस लड़ाई में पूरे कानपुर का मजदूर वर्ग सक्रिय हो गया है। वे इस आन्दोलन को चलाने के लिए चंदा देते हैं, काम करते हैं, भूख हड़ताल में बैठते हैं, जलूस निकालते हैं और आवश्यकता पड़ने पर जेल भी जाने को तैयार हैं।

अब तो छात्रों ने एवं बाबू तबके के कर्मचारियों ने भी अपने आप को कैलाश मिल की इस लड़ाई से जोड़ लिया है। मजदूरों के बीच से जेल जाने के लिए सत्याग्रही तैयार हो रहे हैं क्योंकि उनका कहना है कि, यदि कांग्रेस सरकार की तरह जनता पार्टी की सरकार भी उन्हें भूखों ही मारने पर तुली है तो क्यों न वे जेल की रोटी ही खाएं।

"एक मज़दूर कार्यकर्त्ता"

———

.... कैलाश मिल संयुक्त मोर्चा

लगभग दो साल से तालाबन्दी किए कैलाश मिल के मजदूरों का आन्दोलन एक महीना पुराना हो चुका है। रोज ५-७ लोग भूख हड़ताल पर बंठते हैं। अब तेजी आ रही है। पहली तारीख को पूरा जे० के० ग्रुप कैलाश मिल को खुलवाने के लिए एक दिन की सांकेतिक हड़ताल करेगा। अगर इससे कुछ न हुआ तो एक दिन के लिए कानपुर बन्द होगा और फिर जेल-भरने का कार्यक्रम शुरू होगा अभी भी पूरा आन्दोलन मजदूर कार्यकर्ताओं की ही पहल पर चल रहा है।

..... एलगिन काटन मिल्स

एलगिन मिल के क्लर्कों की लड़ाई बहुत गम्भीर रूप ले चुकी है। क्रमिक अनशन और जलूस तथा समझौता वार्ता के बाद से १९ तारीख से दोनों मिलों के सभी क्लर्क (लगभग ४५०) अनिश्चित कालीन हड़ताल पर जा रहे हैं। मालिकों द्वारा इनकी एकता तोड़ने की हर कोशिश नाकामयाब हो चुकी है। अब कोशिश की जा रही है कि दूसरे मिलों से हड़ताल तोड़ने वाले बुलाए जाएं। इसके बिरुद्ध भी तैयारी चल रही है। सारा आन्दोलन स्वयं क्लर्कों के हाथ में है। उन्हीं के बीच से चुनी गई कार्यकारिणी समिति सारे फैसले लेती है। रोज इन फैसलों को गेट सभा में सभी साथियों के बीच मंजूर कराया जाता है। बाबू क्लास के बीच ऐसी एकता का वातावरण सूती उद्योग में ऐतिहासिक है। मजदूर भी अपना समर्थन दे रहे हैं। भूख हड़ताल चल रही है। अब तक ७८ लोग बैठ चुके हैं। यह लड़ाई मकान किराया के सवाल को लेकर चल रही है।

जे.के. जूट मिल्ज़ में मैनेजमैंट की लापरवाही से दो मृत ३० घायल

'जे. के.' काफी मुनाफा कमाने वाली मिल है। कई हजार मजदूर इसमें काम करते हैं। साईज़िग डिपार्ट में लगाने के लिए मालिकों ने उड़ीसा से एक पुरानी मशीन खरीदी जिसमें 'स्टीम-रोलर' पर धागा लपेटा जाता है। इसके लगने पर मजदूरों ने ऐतराज किया। मशीन कमज़ोर हालत में थी और काम करना खतरनाक था। कारीगरों के विरोध की परवाह न करते हुए मशीन लगा दी गई। जब पिछले दिनों में मजदूरों ने इस पर काम करने से इनकार कर दिया तो उन्हें डांट-डपट कर मजबूर किया गया। दुर्घटना के दिन मजदूरों ने अधिकारियों और मालिकों से फिर इस मशीन की खस्ता हालत के खिलाफ शिकायत की। आश्वासन मिला कि कुछ नहीं होगा। अधिकारी लोग वर्कशाप से हटे ही होंगे कि मशीन का 'स्टीम टैंक' फट गया। दो खूबसूरत, जवान मजदूर लड़के—(उम्र लगभग २५ साल) वहीं पर समाप्त हो गए। लगभग ३० लोग घायल हुए। एक रास्ते में ही मर गया, अस्पताल तक नहीं पहुँच सका। अस्पताल में पड़े लोगों में भी कई की हालत बहुत चिन्ताजनक है।

यह एक आकस्मिक या प्राकृतित घटना नहीं है। कम पूंजी लगातार अधिक मुनाफा कमाने को मालिकों की हवस के कारण यह दुर्घटना हुई। बाद में पता चला कि यह मशीन किसी मिल से 'कडम' थी। वहां नई मशीन लगा दी गई थी और यह बेकार पड़ी थी, जिसे ये लोग उठा लाए।

———

जेल में सांस्कृतिक आन्दोलन—

बंगाल से एक चिट्ठी....

राज्य का सख्त दमन क्रान्तिकारियों का जोश शांत नहीं कर पाया है। पिछले कुछ वर्षों से जेल की कोठरियों में बन्द, कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी एक नई सांस्कृतिक परम्परा बनाने की कोशिश में हैं। इन्होंने अपने भाव, अपनी दृढ़ता व मानवता और अपने विचार, सभी को व्यक्त करने का प्रयास किया है। राज्य ने इस लहर को कुचलने का प्रयत्न किया। पर क्रान्तिकारीचुप न रहे, वे निराश न हुए। जजीरों की झंकार के साथ पानिग्रही का मशहूर गान, जेल की दीवारों से गूंजा रहा —"कम्युनिस्ट हैं हम, कम्युनिस्ट हैं हम ...।"

२२ अप्रैल, सन १९७२। प्रेसिडेन्सी जेल। क्रान्तिकारियों ने फटे कपड़ों को मरक्यूरोक्रोम से रंग कर लाल झण्डे बनाए। झण्डे लहरा दिए जेलों में, और गा उठे, "२२ अप्रैल आज था लेनिन का जन्म दिन..." ।गाना खतम होने के पहले ही जेल के सशस्त्र अधिकारी आ पहुँचे। उन्होंने झंडे छीन लिएं और क्रान्तिकारियों के ऊपर झपट पड़े। खून बहने लगा पर गाना नहीं रुका "खून से रंगा है झंडा हमारा, महनतकशों का ।"

मई दिवस के समारोह में उन्होंने शिकागो के वह अमर शहीद को याद किया "शिकागो के वही खून से रंगा है यह लाल झडा, सर्वहारा तुम जाग उठो आज, जाग उठो आज ।"

उन्होंने अपनी कविताएं सिगरेट के कागजों पर राख से लिखी। मजबूरी थी, पहरेदारों से कविताएं छिपानी थी। समीर राय, एक कवि की अगुआई पर एक दीवारी अखबार भी निकला।

१९७४ · प्रेसिडेन्सी और अन्य कई जेलों में एक तेरह सूत्री माँगपत्र को लेकर, २९ दिन की हड़ताल की गई। कुछ माँगें स्वीकार कर ली गई। क्रान्तिकारी अब अलग-थलग नहीं रखे गए। उन्हें एक साथ रहना मंजूर हो गया। पढ़ने की सुविधाएं भी मिलीं। अब उन्होंने अपना सांस्कृतिक कार्यक्रम और जोश से चलाया।

वे अब नाटक स्वयं लिखकर प्रस्तुत करने लगे। उनका पहला नाटक था, "पुलिस ने क्यों पकड़ा?" इस नाटक में पुलिस के घृणात्मक कामों पर व्यंग्य किया गया। इसके बाद और भी नाटक हुए। इनमें से एक था "जीवन का गाना" जिसमें दिखाया गया कि सामाजिक चेतना के बिकास में क्रान्तिकारी लोग कैसे सहायता करते हैं।

क्रान्तिकारी महिलाओं ने भी जेलों में इस सांस्कृतिक गतिविधि में सक्रिय भाग लिया है। अमानवीय अत्याचारों को सहते हुए उन्होंने गीत, नाटक व साहित्य रचना करने की कोशिश की है। "जेल की चिट्ठी" नाम की एक किताब में इनके लेख छापे गए हैं। शान्तिदेवी एक ६२ वर्षीय महिला ने इसमें एक बहुत ही सुन्दर और दिलचस्प लेख लिखा है। कल्पना बासू, राजश्री दास गुप्ता, मिनाक्षी सेनगुप्ता, रीता राय, शिवानी चक्रवर्ती और वर्णाली भट्टाचार्य ने जेल के सांस्कृतिक कार्यक्रम में महत्वपूर्ण भाग लिया।

इस सांस्कृतिक आन्दोलन के साथ आज बहुत सी नई पत्रिकाएं निकल रही हैं। जेल में लिखी गई कविताओं का एक संकलन निकाला जा रहा है।

कामरेड माओ-त्से-तुंग ने एक भाषण में कहा था कि, हमें लड़ाई दो तरीकों से लड़नी पड़ेगी —एक तरफ राइफ़ल से और दूसरी तरफ सांस्कृतिक आन्दोलन के आधार पर। भारत में यह दूसरे पहलू को खास महत्व नहीं दिया गया है। इसकी गम्भीरता आज हमें महसूस हो रही है।

जेलों में जिस आन्दोलन के लिए इतना खून बहा है, इतना संघर्ष हुआ है, क्या वह एक नई सांस्कृतिक परम्परा बनाने में सफल नहीं होगा?

—निमाई घोष

———

समाजवाद और दैनिक जीवन

(दैनिक जीवन की दरिद्रता)

क्या कारण है कि तमाम पार्टियां - वे दक्षिणपंथी हों या वामपंथी - इस बात पर अड़े रहतीं हैं कि वे 'समाजवादी' हैं। दुनिया भर के हजारों छाप के समाजवाद और कम्युनिज्म का आम लोगों के वास्तविक जीवन से क्या संबंध है। और उन लोगों के मन में इस शब्द का क्या मतलब है जो कि इस समाजवाद के लिए लड़ रहे हैं ?

ऐसी बहुत कम राजनीतिक पार्टियां हैं जो अपने को समाजवादी या कम्युनिस्ट न कहाती हों। इस देश में बीसियों तो कम्युनिस्ट पार्टी व गुट हैं, अनेक समाजवादी पार्टियां हैं, और बड़ी-२ बुर्जुआ पार्टी, जैसे जनता या कांग्रेस भी समाजवाद के प्रति अपनी बफ़ादारी एलान कर चुकी हैं। कहा जाता है कि दुनियां दो खेमे में बटी हुई है—कम्युनिस्ट, और ग़ैर कम्युनिस्ट।

मगर मानवीय रिश्तों के लिहाज से देखा जाए दुनिया भर के समाज एक-दूसरे से एक मायने में मिलते-जुलते है। तमाम प्रकार की विचारधारात्मक बकवास इस दैनिक जीवन की बुनियादी एक-रूपता को छिपा नहीं सकती : कि दुनिया भर में इन्सानों को वेतन कमा कर जिन्दा रहना पड़ता है, एक शब्द में, वेतन गुलामी की दशा। लोग सुबह जागते हैं (या शाम को, अगर वे रात की पाली पर लगे हैं), और जिन्दा रहने के लिए अपने जीवन की ऊर्जा को किसी ऐसे काम पर लगा देते हैं जिनका उनकी इच्छाओं और तमन्नाओं के साथ कोई संबंध नहीं। कई बार ऐसा भी होता है कि वेतन गुलामी मजदूरों को जिन्दा तक नहीं रहने देती : मंडी के उतार-चढ़ाव, संकट, महंगाई, बेकारी आदि जैसी पूंजीवादी प्रवृत्तियों का शिकार तो हरेक मजदूर कभी न कभी रहा है।

सिर्फ जीवित रहने के लिए जब वे दिन के आठ, दस या बारह घंटे भुगतान के रूप में पूंजी को सौंप चुके हैं, तब मजदूर को आराम का समय मिलता है। मगर पूंजी मानवीय जीवन के इस क्षेत्र को भी निगल चुकी है। लोग निष्क्रीयता के साथ घिसे-पिटे विषयों पर फिल्म देखते हैं, या रेडियो सुनते हैं, या दस-बीस खिलाड़ियों का खेल देखते हैं - यानी, वे जीवन व्यतीत करने, खुद सक्रिय होने की मानवीय लालसा को खो बैठते हैं, और इसके बजाय वे मुट्ठीभर लोगों की गतिविधियों से आनन्द पाते हैं।

काम, वेतन-गुलामी के इस सर्वव्यापी मजबूरी को पुरुष और नारी अलग-अलग ढंग से भोगते हैं। अकसर नारी को दोहरा बोझ सम्भालना पड़ता है—घरेलू काम, और वेतन के लिए नौकरी। घरेलू 'काम' माना ही नहीं जाता, और न ही बच्चे पालने के मनोभाविक कष्ट को कोई महत्व दिया जाता है। पुरुष-केन्द्रक परिवार भी एक दोष-भरा ढांचा है जिसमें मां को बच्चों की सारी जिम्मेवारी सौंपी जाती है और पुरुष को बाहर जाकर पैसा कमाना पड़ता है। यदि इस तनावपूर्ण वातावरण में बच्चे फसे रहते हैं—भाग निकलने का कोई अवसर नहीं है। घर में उन्हें तमाम सड़े-गले पूंजीवादी दकियानूसी मूल्यों में ट्रेनिंग मिलती है "औरत का स्थान घर में है" (गृहलक्ष्मी); अपनी मां आदि बहन का सम्मान करो, लेकिन साथ में उनकी और तमाम अन्य नारियों को निजी-सम्पति जैसी वस्तु समझो; उत्पादक बनो - अपने लिए, इन्सानों के लिए नहीं, बल्कि पूंजी के लिए ('राष्ट्र', 'समाजवाद' के लिए) आदि-२। स्कूलों में यह पूंजीवादी ट्रेनिंग आगे बढ़ती है : बच्चों की स्वाभाविक जिज्ञासा और आश्चर्य को नष्ट कर दिया जाता है और उनको मन्दबुद्धि व उदास मशीनों में परिवर्तित करने की प्रक्रिया जारी रहती है, जिससे कि वे पूंजी की संस्था में कोई भूमिका अदा सकें।

पूंजी ने मानवीय जीवन के टुकड़े-२ कर दिए हैं—'काम' का क्षेत्र, 'परिवार' का, और 'राज्य' का। इन्सानों का अपनी क्षमताओं और इच्छाओं से अलगावित रहने का नतीजा यही है। पूंजी के लिए जो महनत होती है, वह महनतकशों के नियंत्रण से बाहर है; क्या चीज बनेगी, किस मात्रा में, और काम की परिस्थितियां क्या होंगी, इन सब पर मजदूरों का क्या कहना है ? इन्सानों की मानवीय आत्मा बिक जाती है और जीवन एक मजबूरी बन जाता है। श्रम तो बेगारी ही है, और नजदीक के रिश्ते 'परिवार' के रूप में जम चुके हैं। हैं। अपने जीवन पर अपना नियत्रण राज्य को सौंपा जाता है, और 'हमारे' प्रतिनिधि अपने ही राजनीतिक धन्धेबाजी में व्यस्त रहते हैं।

सामाजिक जीवन के ये बाधित रिश्तों से तंग आकर ही सर्वहारा (चाहे उनके काम का क्षेत्र कोई भी हो) इन्सान इस रेगिस्तान जैसी जिन्दगी पर आक्रमण करते हैं। मार्क्स ने एक बार

वे लोग जो क्रांति और वर्ग संघर्ष की
बात करते हैं, दैनिक जीवन की बात किए
बिना, ये समझे बिना कि मानवीय
प्रेम पूंजीवादी रिश्तों को काटता है,
और बाधाओं को नकारने से जीवन
स्वीकार किया जाता है – ऐसे लोगों
के मुँह में लाश है

कहा था कि कम्युनिज्म किसी उद्देश्य या आदर्श की लड़ाई नहीं है। इसका मतलब यही है कि जब मजदूर वर्ग-जीवन की परिस्थितियों के खिलाफ़ लड़ते हैं, तो यही संघर्ष पूंजी विरोधी आन्दोलन है, कम्युनिज्म की प्रक्रिया है। इस प्रकार नई दुनिया बनाने का संघर्ष वही संघर्ष है जिसके दौरान सर्वहारा वर्ग की समाप्ति होगी, मानव सभ्यता का वर्ग-चरित्र नष्ट होगा।

पूंजी ने आज सामाजिक जीवन के कोने-कोने को अपने कब्जे में ले लिया है। इसलिए सर्वहारा वर्ग एक नया समाज तभी रच पाएगा जब वह पूंजीवादी रिश्तों पर व्यापक प्रहार करेगा। पूंजी "उत्पादक शक्तियों" को मुक्त कर चुकी है। सर्वहारा आन्दोलन को मानव जाति को मुक्त करना होगा। इतिहास से पता चलता है कि मजदूरों ने बार-२ सामाजिक क्रांति की दिशा में कभी दृढ़, तो कभी अधूरे कदम उठाए हैं। इतिहास यह भी बताता है कि "श्रम के प्रतिनिधि" का दावा रखने वाली पार्टियों ने बार-बार इन संघर्षों को नियंत्रित रखकर राज्य और पूंजी की पुनःस्थापना की है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं कि इतने सारी पार्टियां व नौकरशाही ढांचे अपने आप को 'समाजवादी' या 'कम्युनिस्ट' का नाम देते हैं। आखिरकर, जब राज्य और सत्ता की तरफ से भाषा का प्रयोग होता है, तो वह भी सामाजिक नियंत्रण का एक स्रोत बन जाता है। इसके बावजूद मजदूरों का गुलामी के खिलाफ संघर्ष को राजकीय भाषा कभी भोथर नहीं बना सकती। जब वर्ग निष्क्रिय है, तब तो उसके प्रतिनिधि उसके लिए 'बोल' और 'कर' सकते हैं। जब क्रांति भड़कने लगती है तो प्रतिनिधित्व समाप्त हो जाता है, और वर्ग ही समाप्त होने लगता है।

अगले लेख में हम देख सकते हैं कि सर्वहारा के कुछ हिस्से हैं जो इस दिशा में ठोस और सचेत कदम उठा रहे हैं। इटली के कुछ युवा मजदूर मौजूदा संस्थाओं से तंग आ चुके हैं, पार्टियों के आदर्शों से भी तंग आ चुके हैं, जब नए जीवन का आन्दोलन अपने आप में दैनिक जीवन को बदलने का प्रयास बनने लगता है, जब उत्पादन, घर, खेल-मैदान या सनीमा-हाउस में इन्सान जीवित रहने के स्थान जीवन व्यतीत करने लगते है, तभी कहीं समाजवाद या कम्युनिज्म की बात की जा सकती है, क्योंकि कम्युनिज्म मानवीय सम्प्रदाय के सिवाय और कुछ नहीं है।

इटली--सब बाधाओं का नकारना

काफी समय से इटली के नवयुवक एक ऐसी स्थिति बना रहे हैं जो मई १९६८ की याद दिलाती है। वह पुलिस व ट्रेड यूनियन नेताओं की अफसरी और तानाशाही का जम कर मुकाबला कर रहे हैं। संघर्ष फिर एक बार माने हुए वामपंथी पार्टियों द्वारा नहीं चलाया जा रहा बल्कि कुछ ऐसे स्वतंत्र दलों द्वारा जो कि पिछले कुछ महीनों में ही बने हैं।

ये सब स्वाधीन सर्वहारा संघर्षों की एक लहर सी बन गई है। इनमें है—"आज़ाद मजदूर" "युवा मण्डली" "शहरी कबील" व अन्य निर्दलीय नारी मुक्ति ग्रुपें।

मिलान शहर

७ दिसम्बर १९७६ को इटली के मिलान शहर के केन्द्र को ५००० पुलिस व विशेष आतंक-विरोधी दस्तों ने एक सशस्त्र किले का रूप दिया हुआ था। यह इसलिए कि यहां की एक बड़ी रंगशाला में 'ओथेलो' नामक ड्रामा का पहला 'शो' होना था और इसे देखने के लिए अमीर से अमीर लोग आए थे (१९६८ में इसी जगह पर, ऐसे ही लोगों पर, एक हजार छात्रों ने बासी अण्डों की वर्षा की थी) इस बार के विद्रोही सर्वहारा युवा मण्डली—इस बात का गुस्सा कर रहे थे कि यहां अमीर लोग जोकि इटली की आर्थिक स्थिति को बचाने के

लिए मजदूरों से बलिदान मांगते हैं, इन्हीं लोगों ने इस नाटक की टिकटों के लिए भारी रकम दी थी।

ऐसी ही एक और घटना अक्तूबर ३१, १९७६ को जब इसी 'दल' के ६०० सदस्यों ने एक सिनेमा हाउस की सबसे महंगी टिकटों का एक पैकिट छीन लिए था (यहाँ एक 'राजनीतिक' फिल्म दिखाई जा रही थी) और कम से कम दाम पर बेच दिया था।

"आजाद मजदूर" दल ने बाजार में महंगी चीजों को 'अपना' कर कम दाम पर बेचा। इसका बहुत प्रभाव हुआ। अगले हफ्ते ७ नवम्बर को, मिलान के आसपास की बस्तियों ने संयुक्त कार्यवाही का फैसला किया। ३००० लोग मिलान के 'पिआल्ज़ा वेश्रा" नामक चौक पर पहुँचे। पुलिस को इस बात का पता न था—और वह एकदम चकित रह गई। ये लोग चार सिनेमों में घुस गए और शीघ्र ही इनके मोर्चे में ८००० से अधिक लोग मौजूद हो गए। इसके पश्चात् सिनेमा टिकटों की कीमतें कम करने का प्रस्ताव किया गया। यह एक नया मोर्चा था जिस में मिलान के ५२ युवा मण्डलियां भी थीं सबने अपने अलग झण्डे उड़ाए, 'कुल्हाड़ी' निशान लेते हुए, रंगीली तस्वीरें उठायीं, गीत गाते हुए, गिटार बजाते हुए प्रदर्शन किया।

एक अजीब सी लहर है—इसमें तरह-२ के लोग हैं, जिनके विचार भिन्न हैं परन्तु ऐसे लोग हैं जो आपस में मैत्री बरतना चाहते हैं, और जो सनातनी वामपंथ और उसके नकलची उग्रवादी वामपंथ की निंदा करते हैं।

इन स्वाधीन तत्वों ने अपनी माँगों के लिए संघर्ष किया : अच्छे जीवन के लिए, खाली मकानों को हड़प लेने के लिए और अपने सारे जीवन को वेतन की कीमत पर बेच देने के खिलाफ़।

"हम बंद समाज के निकट रहे हैं—हम शहर पर विजय पाएंगे।" हर जगह पर जलूस—हर जगह पर मोर्चे—"हमने बहुत सबर कर लिया है, अब हम हमला बोलेंगे" सभा का एक मेला बन गया। मेले की एक चलती-फिरती सभा। दीवारों पर चित्र—सड़कों पर नाटक—उजाला ही उजाला। एक ओर तो यह सब—और दूसरी ओर नई पुलिस जो कि कोई भी चीज जो 'स्वाधीनता' शब्द की याद दिलाती थी, जैसे कि लम्बे बाल, मैले कपड़े, दाढ़ियाँ—सब पर हमला करती थी।

१७ फरवरी, १९७७ को इटली की कम्युनिस्ट पार्टी ने एक रैली बुलाई। खुशी का कारण:—इटली की वामपंथी पार्टियों का दक्षिणपंथी पार्टीयों से "ऐतिहासिक समझौता" मकसद: सरकार चलाना। इसी दिन ५०,००० नौजवानों ने इसी 'समझौते' को नकारने के लिए जलूस निकाला। इनका कहना था कि हमारी समस्याओं बेकारी, नए जीवन की इच्छा साकार करने, तानाशाही को नकारने के लिए हमें किसी दफ़तरशाहों की दलाली की जरूरत नहीं है।

सिर्फ सीधी कार्यवाही व स्वेच्छावादी विचारों से यह आन्दोलन नहीं हो सकता है। उन्हें सिर्फ़ सोचने और करने की मुक्ति से मतलब है। एक "शहरी कबील" सदस्य का यह कहना है : "हमारा लक्ष्य राजनीतिक की दुनियाँ को खत्म करना है। इस दुनिया का जीवन और खुशी से कोई मेल नहीं। हम "मजदूर सत्ता" के नारे लगा-लगा के थक चुके हैं जब कि कोई मजदूरों को सत्ता देना ही नहीं चाहता।"

"वीरवार को कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं ने 'लामा' नामक ट्रेड यूनियन संघ के सचिव कहेनुसार उसे "फाशिस्त गुण्डों" के हमलों से बचाने के लिए विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। मगर हमारे नारे सुनकर कार्यकर्ता लोग हंसने लगे। क्योंकि सचिव साहब के सामने भी वे आखिर इन्सान ही तो हैं। मजाक भरे नारों के द्वारा हम लोगों को हंसा सकते हैं, राजनीति आदि सामाजिक जीवन को बदल सकते हैं। आजकल सिर्फ हिम्मत से काम नहीं चलेगा। सब के लिए मकान, चिन्ताओं और परिवारों से दूर··ऐसा समाज जो कि मन्दिरों के स्थान मकान बनाता हो, ऐसे डाक्टर जो बीमारी की चिकित्सा के स्थान उन्हें रोक सकें, ऐसे श्रमिक जो कारिगर हों, फ़ैक्ट्रीयों के स्थान सहकारी संघ। मैं व्यवस्था को नहीं चाहता, लेकिन अमानुपिक व्यवस्था में अव्यवस्था में ही इन्सानियत है···। "शहरी कबील" जिस बिनाश का प्रचार करते हैं, वह तो केवल आत्मरक्षा है।"

एक दूसरे साथी ने कहा : "जो लोग हमें गैर-राजनीतिक कहते हैं वे बेवकूफ हैं। राजनीति है ही कहां ? मुझे कम्युनिस्ट पार्टी गड़बड़ाहट में हमें डूबना देखना चाहते हैं। वे अपने गंदभरे अंतड़ीयों में हमें निगल जाना चाहते हैं।

लेकिन हमारी दुख: से भरी हवाएं मनहूसों के कानों में सनसनाती रहेंगी। उनके खोखले डब्बे जैसे दिमागों को हमारा क्रोध खटखटाएगा। उनके दमन को हमारी कोमलता रंग डालेगी। उनका घमण्ड हमारी शक्ति को बढ़ावा देगा, वे नष्ट हो जाएंगे। हम

से क्या मतलब है? वीरवार को कामरेड लामा पर मैं पत्थर नहीं फेंकता। यही तो वे चाहते थे, जो कार्यकर्ता मारपीट करने आए थे। एक प्रेम भरे चुम्मे से वो साला बरबाद हो जाता। यही तो हमारा काम है, अपने पागलपन से निडर होकर हम सारे खोखले ढंचे को तोड़ गिराना।"

निर्दलीय नारी-मुक्ति ग्रूपों की एक औरत ने कहा: "मर्द-राज्य के खिलाफ वर्षों लम्बे सघर्ष से हम सीख चुके हैं कि श्रम का शोषण एक ही चीज है।

अब हम इस बात को बिल्कुल ठुकराते हैं कि कोई भी गुट या व्यक्ति हमारे दैनिक जीवन में किसी प्रकार की दलाली करें। हम सारी औरतें तो इस गदभरे समाज के मुख्य शिकार हैं। नारी-समस्याओं के लिए हमें अकेला लड़ना होगा, गर्भ समापन के लिए अपने शरीरों पर स्वयं-अधिकार के लिए। साथ में, मैं "स्त्री-माँ" की भूमिका, जिससे औरतों का दोहरा शोषण होता है, "उपजाऊ स्त्री" की भूमिका, जो कि पूंजीवाद की श्रम सेना तैयार करती है, और "मुक्त-स्त्री" की भूमिका, जिसमें औरतों को बाकी तमाम दलितों के 'समान' उत्पीड़न भोगना पड़ता है, इन सभी को भी नकारती हूँ। इसलिए औरत और बेकार, दोनों की हैसियत से मैं इस आन्दोलन में मिल गई हूं, मैं श्रम की काला बाजारी में नहीं फंसना चाहती। मुझमें आशा है। फरवरी १७ सर्वहारा का, आज और कल के बेकारों का आन्दोलन है। यह जारी रहेगा, हालांकि समाज बदलने में समय जरूर लगेगा।"

रोम १४ मार्च, १९७७ अखबारों के अनुसार, सात घण्टों के लिए रोम में घमासान युद्ध चला। दो हथियार की दुकानों से बन्दूकें छीनी गईं। दुकानों, होटलों, कारों व बसों पर तोड़-फोड़ मच गई। क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक पार्टी (इटली के कांग्रेसी) के दफ्तरों पर बमों से हमला हुआ। लगता था कि ये सब कुछ पूर्वनियोजित ढंग से युवकों ने किया। गृहमंत्री ने ऐलान किया कि, "इस देश को हम घुड़सवार गोफलों का अखाड़ा नहीं बनने देंगे। विश्वविद्यालय ने हिप्पीयों, "शहरी कबीलों" का राज नहीं होने देंगे।"

इन "कबीलों" का जन्म भी आधुनिक जीवन का नवनिर्माण करने के इरादे से हुआ। अमरीकी 'कबीलों' का नाम लेना तो बहाना ही था", एक विद्यार्थी ने कहा। "कल तक ये सारा कुछ नाटक, चेहरे पर रंग आदि उतर जाएगा। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि हममें बातें और राजनीतिक 'लाईनबाजी' कम है, सच्चाई ज्यादा और नई किस्म की राजनीतिक गतिविधि है, और नए प्रकार के सामाजिक व व्यक्तियों के आपसी रिश्ते बनाने की इच्छा है।" इनके कुछ नारे हैं:

"घण्टों पर घण्टों, मजदूरों के लिए तनख्वाहें" "हमले को राज्य के हृदय तक पहुँचा दो" "हम उत्तेजनकर्ता हैं, तुम भयभीत स्तालिनवादी, यूनियन के दफ़्तरशाह हो, राज्य से बचाव पाते हो" "कम मकान, ज्यादा झोपड़ियां" 'जब हवा चलती है तब हमें जीवन का आनन्द ढूँढ़ना चाहिए" "मजदूरों का चटोरापन: अपने मालिकों को खा जाओ!" "कबीलों" का घोषणापत्र है:

(१) बाल अपराधी के स्कूलों को रद्द करो, यह तमाम जेलों की समाप्ति की ओर पहला कदम है। (२) सभी खाली मकानों व इमारतों में युवक केन्द्र और रहने के स्थान बनाए जाएं। (३) रंग शालाओं और सनीमा-घरों में टिकटों की कीमतें युवक आन्दोलन तय करेगा। (४) चरस-गांजा पर कानूनी प्रतिबंध समाप्त हो। (५) सुस्ती के लिए वेतन मिले। (६) हर इन्सान व जानवर के लिए १ वर्ग-किलोमीटर जमीन। (७) बालिग-उम्र रद्द हो, रेंगने वाले बच्चों तक को घर छोड़ने का अधिकार हो, (८) पशुओं को मकानों तथा पिंजरों से छुटकारा। (९) चिड़ियाघरों की समाप्ति, (१०) (रोम में) 'पितृभूमि मन्दिर" को तोड़कर उसकी जगह हरियाली, बत्तख, मछली, मेंडक आदि के लिए बाग व तालाब बनाए जाएं। (११) बस्तियों में परिवार-विरोधी दस्ते बनेंगे जिनका काम होगा युवकों, विशेषकर लड़कियों को पितृ-शासन से बचाना।

सर्वहारा युवा मण्डलीयों का घोषणापत्र:—हम क्या करते हैं? संशोधनवादी लालचों से टकराते हैं; सनीमा आदि की कीमतें स्वय कम करते हैं; अफ़ीम का विरोध करते हैं; पूंजीवादी संस्कृति की निंदा करते हैं, युवकों की बेकारी, श्रम में कालाबाजारी, विदेशी श्रमिकों के अति-शोषण, आदि का विरोध करते हैं।

हम क्या चाहते हैं?: काम के स्थानों पर रचनात्मकता। फौजदारी रवैयों की स्वस्थ आलोचना। हमारी कुछ कर सकने की कुछ बन पाने की इच्छा की पूर्ति। हमारा सामाजिक चाण्डालों, हिप्पीयों, युवा सर्वहाराओं का कबील मिलान शहर की ओर बढ़ रहा है (अपने राष्ट्रीय सम्मेलन में), दो दिनों तक हम नाचते, गाते, बहस करते रहे। हम लम्बा सफर कर चुके हैं, रंगीले मौसम में तालाबों पर पहुंचे हैं। अब बरसात आ गई है रंग भीग रहे हैं। हमें गरमाहट की जरूरत है, और सर्दियों में खुशहाली के लिए इकट्ठा रहना होगा। लेकिन मनहूसों (पुलिस) ने हमें जीवन से अलगावित रखा है। वे बर्फीली नजरों से हमारा पीछा करते हैं। इस शहर की

अपनी कुल्हाड़ी को खोद निकाल चुके हैं, अब मनहूसों के साथ कभी सुलट की बात नहीं हो पाएगी।"

ढोल गूंज रहे है

"युद्ध के ढोल की आवाज को हमने पहचाना। हमेशा हम पर सवार इस समाज, इस दुनियां के प्रति हमारा क्रोध, अब विस्फोटित हो रहा है। यह क्रांति नहीं, जाति-परिवर्तन है। वक्त था जबकि हम उस खेल के मूक दर्शक थे जिसका हमारे जीवन के साथ कोई संबंध नहीं था, अब हम अपनी शक्ति दिखाएंगे, हालांकि समूचे समाज को बदलने के लिए यह कुछ नहीं है। कभी तो "कल्पित देश" की राह पुकारती है । लेकिन हमें इन शहरों से प्यार है, जो हमें चण्डाल बनाते हैं। हमें परवाह नहीं, हम किसी एक मोहल्ले के कुछ मकानों में ही अपना नया देश बनाएंगे। जमाने में हम हिप्पी थे, लेकिन पूंजी ने उनके भी रिवाजों को बाजार में बेचना शुरू कर डाला। मई, १९६८ के फ्रांस के मोर्चों को हमने अपने ही सड़कों पर कल्पित किया। युद्ध के रंगों को पहनकर हमने १९७७ क इटली का नाच नाचा। फिर एक बार महसूस किया कि शायद पूंजी हमें निगल जाएगी । लेकिन अन्त में हमने उल्लास से देखा कि ७७ की इटली उत्पीड़ित जनता की वह आवाज है जो कभी भी दब नहीं सकती, शासक वर्ग व संस्था भले ही जो चालबाजी करें। हम अपना झण्डा उठाकर, दुनियां के सामने एक ही नारा पुकारते हैं, "कोई भी हमें हमारा अपनापन प्रकट करने से न रोके।"

— इटली से एक आन्दोलनकर्ता की रिपोर्ट

————

हिन्दी फिल्मों में नारी—एक और वस्तु ?

कहा जाता है कि हमारी परम्परा में औरतों का बहुत आदर, सम्मान किया जाता है। यही नहीं, उन्हें बहन और देवी की तरह पूजा जाता है। पर हमारी सड़कें हमें दूसरी कहानी सुनाती हैं।

सड़क पर चलते हुए—अपने काम पर जाते हुए या बाजार को, या सिर्फ टहलते हुए—एक महिला का कितनी बार अपमान किया जाता है, उसे कितना छेड़ा जाता है, और कितनी बार उनके शरीर पर हमला किया जाता है, यह बताना असम्भव है। पर आप यदि एक मर्द हैं तो आपको इस बरताव का अनुभव नहीं होगा।

औरतों के प्रति समाज में यह दोरंगा व्यवहार सब जगह दिखता है। कहीं भी देखिए— चाहे सनीमा हो, या सड़क पर सनीमा का विज्ञापन हो, आपको जीनत अमान, टीना मुनीम या हेमा मालिनी या और कोई 'एक्ट्रेस' अपना शरीर प्रदर्शित करते नजर आएगी। **जिस तरह आप बाजार में कोई वस्तु खरीदते हैं, उसी तरह आप इनमें से कोई भी औरत को तीन घण्टे के लिए खरीद सकते हैं।** पर तीन घंटे मर्दों के लिए काफी नहीं हैं। तो फिर ये सड़क पर चलती किसी भी लड़की पर हाथ मार लेते हैं। चाहे वह जीनत अमान या हेमा मालिनी न भी हो, पर एक लड़की तो है।

जैसे बाजारी वस्तुओं को आकर्षक दिखावटी रूप दिया जाता है, वैसे ही दिखावे के लिए, समाज में औरतों को आदर और सम्मान का पात्र बताया जाता है। वास्तव में इस समाज में एक नारी का कोई व्यक्तित्व नहीं है।

उनकी पहचान तीन ही हो सकती हैं—फलां मर्द की माँ, या बहन या 'बीबी'। और उन्हें यदि मां या बहन या 'बीबी' की उपाधि नहीं मिल सकती तो वह क्या हैं? एक रण्डी या वेश्या—पुरुषों की हवस की संतुष्टिके लिए एक वस्तु। ऐसे सेक्स के भूखे जानवरों की माँ, बहन या 'बीबी' बनना कौन चाहेगा? क्या इसके अलावा हम और कुछ इज्जत के काबिल नहीं है?

किसी पुरुष की नहीं, हम इन्सान हैं। मानव होने के नाते हम भी अपना व्यक्तित्व चाहते हैं—ऐसा व्यक्तित्व जो कि अपने आप में निहित हो, न कि, किसी मर्द के साथ के रिश्ते से जुड़ा हुआ हो। पर आज का समाज यह नहीं होने देता। पुरुष का प्रभुत्व बनाए रखने के लिए और औरतों को उनके स्थान पर रखने के लिए (घर पर या वैश्यालय में), पूंजीवाद ने एक शक्तिशाली यंत्र बनाया है— वह सनीमा।

भड़ुआ दलाली में सबसे माहिर बम्बई के फिल्म 'प्रोडयूसर' इस तरह की विचारधारा को और उकसाते हैं। हिन्दी फिल्मों में औरत या तो 'सीता' या 'पतिता' के रूप में दिखाई जाती है। वह या तो एक निष्क्रिय, नम्र, आज्ञाकारी, आत्म-त्यागी बहन, बेटी, माँ या पत्नी है, नहीं तो पैन्ट पहनने वाली और सिगरेट और शराब पीने वाली एक वेश्या है (मर्दों के लिए ये सब करना ठीक है—आखिर वे मर्द हैं!)

इन सब बातों का असर सड़कों पर फौरन मालूम होता है छेड़-छाड़ी, बलात्कार इत्यादि। हम जो कपड़े पहनना चाहते हैं, वो नहीं पहन सकते सकते जहाँ कहीं जाना चाहते हैं वहां नहीं जा सकते, जो कुछ बनना चाहते हैं वो नहीं बन सकते, क्योंकि बम्बई की फिल्म परम्परा यह नहीं होने देती। ज्यों ही इनकी फिल्मों में हम पर खोखला सम्मान बौछारा जाता है (जैसे कि 'सत्यम, शिवम, सुन्दरम' में), त्यों ही हम से और नफ़रत की जाती है। फ़िल्मों में रंगीन कल्पनाएं इन सब विचारों को और मजबूत बनाती हैं। पर हमें इसके भटकाव में नहीं फंसना चाहिए। सीधी-साधी फिल्मों में भी हमें वस्तु की तरह दिखाया जाता है। ऐसी फिल्मों से खासकर महिलाएं ही स्वयं बहक जाती हैं। 'घरौन्दा' का उदाहरण लीजिए—एक बहुत "साफ", "अच्छी" फिल्म कहलाई जाती है।

"घरौन्दा"

यह फिल्म एक युवा प्रेमी-प्रेमिका बारे में है। ये दोनों अपनी शादी के बाद रहने के लिए एक मकान की तलाश में हैं। इसके पहले कि इनको मकान मिले, दलाल लोग इनका सारा पैसा हड़प लेते हैं। मकान के भाड़े के लिए इनके पास कुछ पैसा नहीं बचता। तंग आकर वे मकान और शादी दोनों का इरादा छोड़ देते हैं। एक दूसरी और परेशानी 'छाया' के सिर पर है—अपने भाई को विदेश पढ़ने का खर्चा। पैसा कहां से आए? निराश होकर छाया अपने मालदार 'बौस', ~~[struck out]~~ से शादी कर लेती है। 'बौस' साहब, छाया में अपनी पिछली पत्नी की झलकी देखते हैं, इसी कारण उससे प्रेम करता है। 'बौस के मुंह पर यह कह कर कि, उसे पैसे से खरीदा नहीं जा सकता, छाया उसके चुंगल में फस जाती है।

फिल्म के शेष भाग में यह दिखने को मिलता है कि, एक युवा स्वतंत्र नारी किस तरह एक ऐसे आदमी से शादी मंजूर करती है, जो कि उसे बिल्कुल पसंद नहीं है। असली प्रेमी के दिल में इससे इतनी चोट पहुँचती है कि, वह उदास होकर शहर छोड़ना चाहता है। इसके पहले वह फिर प्रेमिका से अपने साथ चलने का अनुरोध करता है। पर छाया इस प्रस्ताव को इन्कार कर देती है। वह शादी तोड़ना नहीं चाहती - ऐसी शादी जिसे उसने स्वयं अपनी बिक्री के समान बताया था। अन्त में उसका प्रेमी शहर नहीं छोड़ता। इन शब्दों में कि "जिन्दगी में सिर्फ़ छाया नहीं है, हकीकत भी है।" वह अकेले ही जिन्दगी का सामना करने का फैसला लेता है।

पर छाया का क्या हुआ? क्या उसके लिए कोई और रास्ता नहीं था? यदि वह अपने प्रेमी से शादी नहीं कर सकती थी, तो क्या किसी नापसंद आदमी के साथ अपनी जिन्दगी बिताना ज़रूरी था? वह अपनी नौकरी जारी रखकर, बिना किसी मर्द के सहारे क्या नहीं रह सकती थी? नहीं, औरत को हमेशा पुरुषों के साथ अपने संबधों के आधार पर ही आँका जाता है। एक नापसद व्यक्ति की पत्नी, या एक निस्वार्थ बहन जो कि, अपने भाई के लिए अपनी जिन्दगी बरबाद करती है। वह अपने प्रेमी के बिना, जिन्दगी का सामना अकेले क्यों नहीं कर सकती?

क्योंकि हमारे समाज में और खासकर सनीमा में, औरत का कोई 'व्यक्तित्व नहीं है। वह किसी की कुछ है—'बीबी' बेटी, बहन या मां। यही नहीं, वह एक "चीज" है। जब चिन्तत होकर, अमोल पालेकर पूछते हैं कि, वे दोनों कब तक अपने फ्लैट में रहना शुरू कर

सकते हैं, तब उनका दोस्त कहता है कि, बस, सामान लाने की देर है, फ्लैट तैयार है। इस पर पालेकर साहब बोलते हैं, "ग्राधा सामान तो पहुंच भी गया है"—अपनी छाया की ओर संकेत करते हुए। इसी फिल्म में एक और जगह, एक दूसरी औरत (एक ऐंग्लो-इन्डियन, जो कि हिन्दी फिल्मों में वैश्या का रोल खेलती है) को "टैक्सी" बुलाया जाता है। आफिस में बैठी पारसी सेक्रेट्री सभ्य औरत नहीं है, क्योंकि वह स्कर्ट पहनती है। पर हमारी 'हीरोइन' क्योंकि साड़ी पहनने वाली, शान्त महिला है—वह सम्मान (खोखले) के लायक सभ्य महिला है (चाहे वह अपने होने वाले पति के लिए केवल सामान का एक अदद है)।

"दुल्हन वही जो पिया मन भाए"

"दुल्हन वही जो पीया मन भाए" नामक फिल्म की लोकप्रियता से ही मालूम पड़ता है कि नारी मुक्ति अभियान का संघर्ष कितना तीखा होगा। हीरो (प्रेम किशन) अपने दादा के मन शांत करने के लिए एक फूल बेचने वाली लड़की (रमेश्वरी) को घर में अपनी पसंद की बहू के रूप में ले आता है। जबकि उसकी असली पसंद (श्यामली) तो कहीं दूर मौज उड़ा रही है। रमेश्वरी के चाल चलन से दादा जी का मन खुश हो जाता है। (सही कहा गया है कि फिल्म का नाम 'दुल्हन वही जो ससुर मन भाए"—होना चाहिए था!)। वह सिर्फ़ साड़ी पहनती है, अंग्रेजी का एक शब्द तक नहीं समझी। बाल लम्बे हैं, शकल-सूरत शुद्ध भारतीय। खाना सर्वोच्च दर्जे का पकाती है। घर संभालने के काम में माहिर है। साथ में (सुभान अल्लाह!) वह धार्मिक भजन इतनी कोमलता से गाती है! जाहिर है (यह क्या सोचने की बात थी!) कि भलाई, भद्रता, व नैतिकता के गुण रमेश्वरी में ही हैं।

वहां श्यामली और उसकी मां (शशीकला) अंग्रेजी में बकती रहती हैं, सिगरेट पीती हैं, और (ओफ!) विदेशी किस्म के कपड़े पहनती हैं। इन सब बातों से भारतीय सभ्यता में पले हुए दर्शक सज्जन खट से समझ जाते हैं कि श्यामली में पाप, दुष्टता, स्वार्थ और चरित्रहीनता है। उनके हृदय में रमेश्वरी के प्रति अति-स्नेह, और श्यामली के प्रति घोर नफ़रत भर आती है। बनने वाले ससुर जोरों से प्रचार कर रहे होते हैं कि बेटे, तुम्हें मालूम है कि औरत का कितना महान स्थान है? वह गृहलक्ष्मी है, गृहलक्ष्मी! बेवकूफ लौण्डा प्रेम किशन आखिर समझ ही जाता है—दुल्हन वही जो सनातन धर्म लाए। और परम्परा का साढ़े तीन घण्टों लम्बा आशीर्वाद पाके दर्शक लोग तालीयां बजाते हुए निकलते हैं।

और देखना है तो लीजिए "**पति पत्नी और वो**" (आने वाली फिल्म)। "वो" कौन है, ये तो जाहिर है—एक "माडर्न" गंदे चरित्र की "र ..." और पत्नी, एक नम्र, कोमल, पति की आज्ञाकारिणी स्त्री।

सभी फिल्मों में औरत का यही दोरंगा रूप देखने को मिलता है एक तरफ तो परम्परागत नैतिक सिद्धान्तों के दायरे में, और उन्हें मजबूत बनाने वाली, भोली-भाली, सीधी-साधी महिला, और दूसरी तरफ, बुरजुआ विचारधारा के अनुकूल—एक वस्तु।

इसका मतलब यह नहीं है कि पैन्ट और सिगरेट वाली महिला हमारे लिए आदर्श हैं। पर हमारे लिए नैतिकता का संबध पैंट पहनने या न पहनने, सिगरेट पीने या न पीने से नहीं है। क्या नैतिकता का आधार इससे ज्यादा गहरा नहीं है? क्या नैतिकता का प्रश्न सामाजिक उत्पीड़न, अलगाव और पूंजीवादी समाज के और बंधनों को तोड़कर एक नया मानव बनाने से नहीं जुड़ा है?

—शोभा

सूचना

पैसे की कमी और वितरण संस्था के अभाव के कारण 'फिलहाल' के प्रकाशन में देरी होती रही हैं। पाठक गण से हमारा अनुरोध है कि जिन्होंने योगदान अब तक नहीं भेजा है, वे शीघ्र ही इसे भेजने का कष्ट उठाएं। विलम्ब के कारण इसकी लम्बाई बढ़ गई है, साथ में खर्च भी बढ़ता है! इसलिए वार्षिक योगदान ६ रु० ही बना रहेगा।

---सम्पादक मण्डल

स्त्री मजदूरों का संघर्ष

भूमिका

यह सामाजिक जीवन और उसके रिवाजों का एक तथ्य है कि औरतों को मर्दों की तुलना में नीचता समझा जाता है और उसके साथ अधीनता का बरताव किया जाता है। इस परिस्थिति को औरतें ज्यादा देर तक बरदाश्त नहीं करने वाली हैं—ये इस बात से सिद्ध होता है कि घर में और श्रम के स्थान पर भी वे अपनी जीवन की पराधीनता के खिलाफ़ संघर्ष शुरू कर रही हैं। क्योंकि घरेलू काम वेतन पर नहीं किया जाता है, उसे श्रम ही नहीं माना जाता। उल्टा जब औरतें फैक्ट्रीयों में नौकरी करतीं हैं, छटनी के समय उनका नम्बर पहला लगता है, एक ही किस्म के श्रम के लिए अक्सर उन्हें मर्दों से कम वेतन मिलता है, और श्रम की परिस्थितियां भी उनकी अकसर पिछड़ी हैं। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि औरतों को दो मोर्चों पर लड़ना पड़ता है, उत्पादन के स्थान पर (चाहे श्रम फैक्ट्री का या घर का हो), और विचारों और परम्पराओं के स्तर पर भी, क्योंकि मौजूदा रीति-रिवाज़ ही उनकी घरेलू गुलामी (जिसे 'गृहलक्ष्मी' कहा जाता है) को दोहराते हैं।

आगे हम कुछ उदाहरण दे रहे हैं जहाँ औरतें अपनी तमाम विशेष बाधाओं का सामना करती हुई, वर्ग-संघर्ष के अग्रुए दस्ते में आ पहुँची हैं। कानपुर के आॅर्डनैंस फैक्ट्री के घेराव में औरतों ने अगुआ भूमिका अपनाई है, इसमें आश्चर्य भी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि मैनेजमैंट ने उनकी औरत होने की दशा का फायदा उठाकर उनसे ज्यादा काम लेने का प्रयास किया बम्बई में ...

फार्मे सर्च-फैक्ट्री के स्त्री मजदूरों का लड़ाकू संघर्ष

"इस काम में हमें क्या सुविधाएं दी जाती हैं? कुछ भी नहीं। यहाँ हमें जानवरों से भी बदतर समझा जाता है। सालों की नौकरी के बाद भी हमको हर समय निकाले जाने का डर रहता है। आज हमारे पास कोई काम नहीं है, कल हमारी दूसरी बहनों को इसी दुर्भाग्य का सामना करना पड़ सकता है। हम सिर्फ अपने लिए नहीं लड़ रहे हैं, बल्कि काम करने की अमानवीय परिस्थितियों के खिलाफ लड़ रहे हैं। जो सालों से इसी तरह चली आ रही है।"

ये शब्द बम्बई की फार्मे-सर्च लेबोरेटरी में काम करने वाली एक स्त्री-मजदूर के हैं।

यह लघु-उद्योग फैक्टरी रवीन्द्र कुलकर्णी, बम्बई के भूतपूर्व मेयर और उनके लड़कों की साझेदारी में – ३५ स्त्री-मजदूर और ५ पुरुष मजदूरों के द्वारा चलाई जाती है। मई से इस फैक्ट्री के स्त्री-मजदूर हड़ताल पर हैं। १४ मई को यह स्थिति शुरू हुई, जब ४ स्त्री-मजदूरों को काम पर वापस आने से रोका गया। उन्हें कहा गया कि फिलहाल उनकी कोई जरूरत नहीं है, जब जरूरत होगी तब उन्हें बुला लिया जायेगा। १८ मई को स्त्री-मजदूरों ने फैक्टरी में भारी सामान उठाने के काम से इन्कार किया। १९ मई को जब वे काम पर आईं तो उन्हें कहा गया कि फैक्टरी बन्द की जा चुकी है, और उनके लिए कोई काम नहीं है। स्त्री मजदूर अपने निर्णय पर डटी रहीं और उन्होंने घर लौटने से इन्कार कर दिया। साथ ही यह शर्त रखी कि काम करने वाली ४ महिलाओं को वापस लिया जाये और उनके काम करने की स्थिति में सुधार किया जाये। उस दिन से वे सभी मजदूर हड़ताल पर है। २७ मई को बाहर से लाई गई दूसरी महिलाओं को काम पर रखा गया, जबकि फैक्टरी मालिकों के अनुसार, बंद थी।

तब से रोज ३०-३५ महिलाओं को एक टेम्पो में काम के लिए लाया जाता है। एक दिन जब हड़ताली स्त्री-मजदूरों ने टेम्पो को रोकने की कोशिश की तो उन पर मालिकों के भाड़े के गुंडों ने हमला किया। उनकी साड़ियां खींची गईं और उनकी आखों में मिर्च पाउडर फेंका गया। इस हमले के दौरान एक महिला घायल हो गई।

स्त्री-मजदूरों का हौसला और उत्साह ढीला नहीं हुआ। जैसे कि एक महिला ने बताया—"हमारी माँग यही है कि हमें वापिस काम पर लिया जाए। हो सकता है हमें यह काम फिर न दिया जाये, लेकिन हम इस मालिक को सबक सिखाना चाहते हैं, ताकि दूसरी महिलाओं पर यह अत्याचार दोबारा न किया जाये। यह संघर्ष हम आसानी से छोड़ने वाले नहीं हैं।"

फार्मासर्च में काम की परिस्थिति

४० वर्ष पुरानी यह फैक्टरी काम की अमानवीय स्थिति और व्यवहार के लिए प्रसिद्ध है। यह फैक्टरी सैलाइन का उत्पादन करती है जो एक प्रकार का तरल ग्लूकोज है। यह पदार्थ बोतलों में भर कर पैक किया जाता है। स्त्री मजदूरों से बोतल भरने

और पैक करने के नियमित काम के अलावा, अतिरिक्त काम भी लिया जाता है। फैक्टरी में अधिकतर युवा महिलाएं काम करती हैं— उनकी शादी होते ही उन्हें बरखास्त कर दिया जाता है। श्रम के बाद इन मजदूरों को मुश्किल से भरपेट भोजन मिल पाता है। और फिर महिला मजदूरों का मुख्य फायदा तो पूंजीपति के लिए एक ही है सस्ते दामों में श्रम की उपलब्धि। मैट्रिक पास स्त्रियों को ५ रु० रोज, और अन्य महिलाओं को ४.५० रु० रोज, वेतन मिलता है। तीन चार महीने काम करने के बाद स्त्री-मजदूरों को स्थाई कर दिया जाता, पर इसके बाद भी इन्हें अस्थाई मजदूरों की तरह कभी भी बरखास्त कर दिया जाता है। ये महिलाएं यदि छुट्टी पर जाएं तो इनका वेतन काट लिया जाता है, जबरदस्ती इनसे 'ओवरटाइम' काम लिया जाता है यदि इन्कार करें तो बरखास्त की धमकी सुनने को मिलती है।

इस तरह की काम की परिस्थितियाँ अन्य लघु उद्योगों में भी मौजूद हैं। अपने खर्च को कम से कम रखने के लिए इनके मालिक तरह-तरह, के उपाय अपनाते हैं—कभी पुरानी कंडम मशीनों और सस्ते श्रम का उपयोग, तो कभी काम के घंटों का बढ़ाव। औषध-निर्माण उद्योग की इन परिस्थितियों का असर सबसे पहले महिलाओं पर पड़ता है क्योंकि इस उद्योग में उनकी संख्या सबसे अधिक है।

आर्डनेन्स फैक्टरी कानपुर

तारीख १० जुलाई, कानपुर आर्डनेंस फैक्टरी में जबरदस्त घेराव। ६००० कर्मचारियों ने जनरल मैनेजर को मेन आफिस में घेर लिया। पहले रिंग में ४०-५० औरतें शामिल थीं। ५००-१००० तक आदमी हर समय घेराव में शामिल रहे।

कई साल से बहुत सी औरतों को आम मजदूर की तरह भरती करके दरजी का काम लिया जा रहा है। दरजी के पद खाली होते हुए भी उन्हें तरक्की नहीं दी गई। काफी तनाव की स्थिति है। पुलिस और पी. ए. सी काफी संख्या में लगाए गए हैं।

फिलहाल का परिचय

फिलहाल मजदूरवर्ग के आन्दोलन में एक हिस्सेदार बनना चाहता है। इसलिए इसका रुख वर्गीय रहेगा, न कि धर्म प्रचारक अध्यापकों का। हमारा मतलब यह है कि इसमें विचारों के आदान-प्रदान के साथ-साथ एक आदर्श बना रहेगा—वर्ग एकता का आदर्श। आन्दोलन के इतिहास से हम सीखते हैं कि मजदूरवर्ग अपने राजनीतिक मतभेदों के बावजूद वर्गीय एकता बनाने और समाज को क्रान्तिकारी ढंग से बदलने की क्षमता रखता है। अपने सामाजिक जीवन तथा अनुभवों का निचोड़ निकाल कर ही एक लम्बे ऐतिहासिक दौड़ में वह इस क्षमता को पहचानता है, और इस आधार पर क्रान्तिकारी संगठन बनाता है। १९५० के बाद पूंजीवादी व्यवस्था के स्थायित्व काल में मजदूरों में जो एक व्यापक निष्क्रियता आ गई थी, वह १९६५ के बाद धीमे-२ खत्म हो रही है। बढ़ती हुइ संख्या में मजदूर, संघर्ष के लड़ाकू तरीके और नई संस्थाएं भी बनाने की कोशिश कर रहे हैं। 'सोवियत', मजदूर सभा, 'कम्यून' जैसी वर्गीय सस्थाओं की बात दोबारा उठाई जा रही है, चाहे मजदूरों की आत्म गतिविधि का रूप कितना ही नया हो।

साथ में यह भी समझ धीरे-२ उभर रही है कि पूंजीवाद (निजी या सरकारी) में दरिद्रता सिर्फ आर्थिक नहीं, बल्कि जीवन भर की दरिद्रता है, मानवीय रिश्तों की गरीबी है। इससे हम तब तक नहीं मुक्त होंगे जब तक कि हम पूंजी और राज्य के नियन्त्रण की जगह सामाजिक जीवन का आत्म-संचालन शुरू नहीं करेंगे। आजकल श्रम की कीमत के साथ-साथ काम की परिस्थिति और इज्जत के सवाल भी सामने आ रहे हैं: चारों ओर, फैक्ट्रियों, खेतों, विश्वविद्यालयों और पार्टियों में लोग न केवल आर्थिक पिछड़ेपन, बल्कि तानाशाही, नेतागिरी, श्रेणीतंत्र और असमानता के खिलाफ आवाज उठा रहे हैं, मानवीय समानता और आजादी के लिए लड़ाई लड़ रहे हैं।

इस विशाल आन्दोलन को कोई गुट या कुछ गिने चुने विद्वान नेता नहीं चला सकते हैं। परन्तु क्योंकि यह आन्दोलन किसी की 'लाईन' पर नहीं बल्कि एक गहरे, मानवीय तत्व पर आधारित है, इसे कोई रोक भी न पाएगा, चाहे यह सभव है कि इसे जगह-२ पर हारें भुगतनी पड़ेंगी।

'फिलहाल' इस आन्दोलन में हिस्सेदार बनने की कोशिश करेगा। इस उद्देश्य को नजर में रखते हुए, इसमें मोटे तौर पर निम्न-प्रकार के लेख छपेंगे :—

(१) खेतिहर व फैक्टरी के मजदूरों के संघर्ष पर, विशेषकर संघर्ष के नए तए तरीकों पर रिपोर्ट, (२) महिला प्रश्न पर लेख,

(३) मजदूर वर्ग के राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास से कुछ सबक या उसका वर्णन, (४) आन्दोलन से संबंधित साहित्य, कविताएं आदि (५) काम की परिस्थितियों पर रिपोर्ट (६) पूंजीवादी सभ्यता की सांस्कृतिक आलोचना, (७) सैद्धान्तिक विचार-विमर्श, पत्राचार आदि।

मजदूर भाइयों और पूंजीवादी विद्रोही अन्य साथियों को 'फिलहाल' में लिखने का खुला निमंत्रण है। हम इसे भिन्न केन्द्रों से निकालने का प्रयास भी करेंगे, ताकि इसका आधार व्यापक बन सके और पाठक इसके संचालन में हाथ बटाकर इसे वास्तव में अपना ही अखबार बना सकते हैं। इसमें लिखकर और सालाना योगदान भेजकर आप इसकी सहायता कर सकते हैं।

—सम्पादक मण्डल

राजनीतिक गुठबंदी के बावजूद, मजदूरों की एकता...

जब कि सारे देश में "वामपंथी राजनीतिक दलों की एकता" के विषय पर वाद-विवाद कोल्हू के बैल की तरह चरमराता हुआ चल रहा है और किसी नई दिशा में बढ़ नहीं रहा है, मजदूर वर्ग ने अपने संघर्षों में जीती-जाती एकता का ज्वलंत उदाहरण पेश कर दिया है। आज मजदूर वर्ग अपनी पहल कदमी पर राजनीतिक दलों के लेबल उतार कर, विभिन्न ट्रेड यूनितनों की सदस्यता के बावजूद संघर्ष में एक हो रहा है। कामगारों का संघर्ष आज उनके मौलिक अधिकारों के पुर्नविजय के लिए है और पूंजीपति वर्ग एवं राज्य व्यवस्था के द्वारा चलाए गए भीषण दमन के विरुद्ध है। ऐसी परिस्थिति ने मजदूरों के विभिन्न हिस्सों को एक होने के लिए बाध्य कर दिया है और न सिर्फ फैक्टरी स्तर पर बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर पर भी मजदूर वर्ग की एकता आज बढ़ती जा रही है। राजनीतिक पार्टियों और ट्रेड यूनियनों का लबादा उत्तर रहा है और सच्ची मजदूर एकता सुदृढ़ हो रही है।

यह एक नई चीज है।

पिछले साल CITU (सीटू), AITUC (एटक) और अन्य यूनियन मईदिवस के अवसर पर भी साथ नहीं आ सके थे। सितम्बर १९७७ में भी जब अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कन्वेशन हुआ, CITU नेAITUC और INTUC से मिलने को मना कर दिया था। लेकिन१९७८ में होने वाले हड़तालों, रैलियों, जुलूसों और मोर्चोंमें हरजगह संयुक्त कार्यबाही और साथ-साथ मिल कर संघर्ष करने की प्रक्रिया को स्पष्ट कर दिया है। पहले ऐसी संयुक्त क्रिया कभी कभी होती थी, आज यह मजदूर वर्ग के काम की मुख्य धारा सी बन गई है।

दिसम्बर १९७७ : पश्चिम बंगाल के इन्जीनियरिंग उद्योग में १५ दिसम्बर को AITUC, CITUU, INTUC और HMS (हिन्द मजदूर संघ) के द्वारा बुलाया गया एक दिन का सांकेतिक हड़ताल।

जनवरी १९७८ : कानपुर में स्वदेशी कॉटन मिल मजदूरों और यू. पी. के शिक्षकों की एकता रैली एकता दियस ९ जनवरी को। इसमें भाग लिया AITUC, HMS, CITU, यू. पी. बैंक कर्मचारी यूनियन और शिक्षक संघ ने।

ऐलकली एन्ड केमिकल कम्पनी के दो महीने से अधिक की हड़ताल की समाप्ति। आखिरी समझौते पर CITU, AITUC और INTUC की सहमति।

२० जनवरी को वेतन जाम विरोध दिवस। अनेक जगहों पर संयुक्त रैली और मोर्चे। AITUC, INTUC, CITU, HMS, HMP (एच. एम. पी), BMS (भारतीय मजदूर सघ) सभी ने हिस्सा लिया।

दुर्गापुर में फर्टिलाइजर कारपोरेशन में २१-सूत्री संयुक्त मांग पर AITUC और CITU द्वारा संयुक्त हड़ताल।

महाराष्ट्र में सरकारी कर्मचारियों की लम्बी हड़ताल में AITUC, CITU, HMS, HMP तथा सर्व श्रमिक संघठन द्वारा साथ-साथ काम।

फरवरी १९७८ : फरीदाबाद में मजदूरों पर आर. एस. एस. आदि द्वारा आघात के विरुद्ध २ फरवरी को संयुक्त रैली।

मार्च १९७८ : २३ मार्च को नई दिल्ली मे रेलवे, डाक-तार एवं सुरक्षा के सरकारी प्रतिष्ठानों में काम करने वाले कामगारों का संयुक्त घरना।

अप्रैल १९७८ : संयुक्त पोर्ट एन्ड डॉक वर्क्स बोर्ड की स्थापना, वेतन बृद्धि, बोनस आदि के मसलों पर AITUC, INTUC और BMS द्वारा २६ अप्रैल को एक दिन की सांकेतिक हड़ताल।

१२ अप्रैल को इस्पात मजदूरों के "माँग पूर्ति दिबस" का AITUC, CITU, BMS, UTUC, NFITU आदि सभी ट्रेड यूनियनों द्वारा आयोजन।

खेत्री ताँबा परियोजना में यूनियनों द्वारा संयुक्त रूप से चलाई गई ५५ दिवसीय हड़ताल की समझौते के बाद समाप्ति।

सरकारी क्षेत्र के संस्थान भारत अल्मूनियम, कोरबा में फैक्टरी एवं खदानों में वेतन वृद्धि, उन्नति पद्धति आदि के सवालों पर ४००० कर्मचारियों द्वारा AITUC, INTUC, CITU तथा BMS के संयुक्त ऐक्शन कमेटी के नेतृत्व में १७ अप्रैल को साँकेतिक हड़ताल।

जूट उद्योग के राष्ट्रीयकरण, वेतन बृद्धि, बंद मिलों के फिर खोलने, आवास एवं महंगाई भता आदि के सवालों पर सभी ट्रेड यूनियनों के आह्वान पर सवा दो लाख मजदूरों द्वारा २७ अप्रैल को एक दिन की हड़ताल। १९७७ के २८ जुलाई की साँकेतिक हड़ताल भी यह एकता कायम नहीं कर सकी थी।

मई १९७८ : नागपुर जिले के सिलवारा खान मजदूरों द्वारा CITU, AITUC, HMS, INTUC के संयुक्त नेतृत्व में करीब ६०० बदली मजदूरों को स्थाई बनाने के लिए हड़ताल।

ग्वालियर में जियाजी राव कॉटन मिल में AITUC, CITU, HMP, HMS और INTUC के एक हिस्से द्वारा संयुक्त ऐक्शन कमेटी की स्थापना।

पश्चिम बंगाल में राज्य भर में महंगाई भत्ता में कटौती के विरोध में चार लाख मजदूरों की संयुक्त हड़ताल।

अपील

हमारे आर्थिक संकट को दूर करने के लिए हम उन हमदर्दी सज्जनों से सहायता की अपील करते हैं जो ६ रु० से कहीं ज्यादा योगदान कर सकते हैं। कृपया पो० ओ० बोक्स ३६७ पर अपने पोस्टल आर्डर भेजें।

धन्यवाद,

—सम्पादक मण्डल

---

११ मई को ट्रेड यूनियनों के अधिकारों में कटौती, मजदूरों पर अत्याचार, महंगाई आदि के विरोध में और बोनस तथा ३०० रुपये के कानूनी न्यूनतम वेतन के लिए AITUC, CITU, INTUC, UTUC (यू.टी.यू.सी.) और स्वतंत्र यूनियनों द्वारा दिल्ली में विशाल रैली।

सारे देश में मई दिवस के उपलक्ष में मजदूरों की संयुक्त सभाएं।

जून १९७८ : राजस्थान में CITU, AITU तथा INTUC द्वारा संयुक्त संघर्ष समिति का गठन।

ऊपर मजदूर वर्ग द्वारा दिखाई गई एकता के कुछेक ही उदाहरण है। इसी प्रकार मजदूर बर्ग अपने बीच सुदृढ़ एकता की कड़ी कायम और मजबूत कर रहा है :
दुनियाँ के मेहनत कशों एक हो !

सूचना

- **पाठकगण हमारा पता कृपया नोट करें—'फिलहाल', पो. ओ. वाक्स ३६७, नई दिल्ली-११०००१।**
- **अपने योगदान को कृपया पोस्टल आर्डर के द्वारा उपरोक्त पते पर ही भेजें।**

वामपन्थी सरकार और मजदूर आन्दोलन

पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकार का आज खुद यह दावा है कि वहाँ "मजदूर आन्दोलन" या "औद्योगिक संबधों" में देश के किसी और हिस्से के मुकाबले में अधिक शान्ति और स्थायित्व है। हड़तालें कम संख्या में और थोड़े समय के लिए होती हैं। घेराव नहीं के बराबर हैं। १९७७ में ६२ और जनवरी से मई १९७८ तक केवल ५ घेराव हुए हैं। यह परिस्थिति १९६७ से बहुत भिन्न है जब वामपंथी मोर्चा पहली बार गद्दी पर बैठा था। १९६७ में ८१६ घेराव और १९६९ में ६१७ घेराव हुए थे।

१९६७ और १९६९ में पूंजीपति आतंक से घिरे हुए थे। इम्प्लायरस फेडेरेशन ऑफ इण्डिया के प्रतिनिधि नवल टाटा ने जोर देकर कहा था कि "घेराव एक खतरनाक हथियार है जो अराजकता कहलाएगा" (हिन्दुस्तान टाइम्स ११ मई १९६७) आज उद्योगपति पश्चिम बंगाल की राजनीतिक परिस्थिति को दूसरी ही दृष्टि से देखते हैं।

ऐसा लगता है कि सी. पी. आई. (एम) और अन्य सत्तारूढ़ वामपंथी दलों ने अपने अनुभव से 'सीखा' है। उन्होंने सीखा है कि लडाकू मजदूर आन्दोलन को बढ़ावा देने से पूंजी भाग कर दूसरे राज्य में चली जाती है, लॉकआऊट का भारी खतरा हो जाता है अन्त में सरकार के गिरने या बाहर से गिराया जाना भी आसान हो जाता है। इसलिए आज उनका एक ही उद्देश्य है—औद्योगिक शान्ति बनाए रखना। यह बात हम तभी ठीक से समझ सकते हैं जब हम १९६७-१९६९ के समय की परिस्थिति और वामपथी मोर्चे की नीति का उनके आज के रुख से तुलना करे।

पश्चिम बंगाल में मजदूर आन्दोलन और घेराब

घेराव का जन्म पिछले मजदूर आन्दोलनों के अनुभव के आधार पर हुआ था। १९६५ के बाद से देश भर के मजदूर आन्दोलन में उभार आया था। बंगाल में इसने बहुत ही उग्र रूप धारण किया था। १९५७ में २२७ से बढ़कर, मजदूर और मालिकों के बीच झगड़ों की संख्या १९६२ में २८८ और १९६७ में ४६९ हो गई थी। इसमें हिस्सा लेने वाले मजदूरों की संख्या भी दुगनी हो गई थी। (१९६० में १३३६५४ और १९६८ में २७६३२३)।

सी. पी. आई. (एम) का दृष्टिकोण - सी. पी. आई. (एम) के शब्दों में।

घेराव आन्दोलन :—

१९६७ : घेराव का समर्थन :

● **एम बसुवपुनियाह (सी पी एम)**: मजदूरों के हाथ में घेराव एक प्रभावशाली, हथियार है जिससे वह अपनी परिस्थिति में सुधार कर सकते हैं। घेराव से मालिकों और मुनाफाखोर शोषकों पर एक ऐसा भारी दबाव डाला जा सकता है जिससे उन्हें मजदूरों से समझौता करने पर मजबूर होना पड़े।

अमृत बाजार पत्रिका (१९ जून, १९६७)

● **बी. टी. रणदिवे :** "आज घेराव जनता की बढ़ती हुई चेतना की निशानी है। यह एक उचित तरीका है—ट्रेड यूनियनों के लिए विरोध और संघर्ष का हथियार है।"

पीपूल्स डेमोक्रेसी (२१ मई, १९६७)

● **पी. सुन्दरैया :** – (सी.पी.एम सचिव) :— "मैनेजमेण्ट से मजदूरों की मांग मनवाने के लिए घेराव एक उचित हथियार है।"

अमृता बाजार पत्रिका (२७ मई, १९६७)

१९७७-७८ : – घेराव का विरोध : –

● **ज्योति बसु :** आखिर कार घेराव से मजदूरों का फायदा नहीं होता है। हो सकता है कभी-कभी एक आधा घेराव हो जाए। लेकिन ऐसी परिस्थिति में जब वे फैसला न ले पा रहे हों हमने पुलिस को हमसे बात करने के लिए कह दिया है। यह भी आदेश दिया है कि **फौरन घेराव को खत्म करके** दोनों पक्ष को समझौता बार्ता के लिए राजी किया जाए।

वाणिज्य मडल के सामने भाषण।

टाइम्स ऑफ इण्डिया २० अगस्त १९७७

हड़तालों पर भी छींटा कसो

● **ज्योति बसु :** "हड़ताल मजदूरों का आखिरी हथियार है और इसे तभी इस्तेमाल करना चाहिए जब और सब तरीके असफल हो चुके हों।

पीपुल्स डेमोक्रेसी, (१० जुलाई १९७७)

● **ज्योति बसु** (वाणिज्य मण्डल के सामने) "आपको विश्वास रखना होगा हि हम लोग पागल नहीं हैं कि सरकार में होकर हम लोग हड़तालों को बढ़ावा देना चाहेंगे।"

टाइम्स ऑफ इण्डिया, (२० अगस्त, १९७७)

१९६० में ५९% हड़तालें १ से १० दिन तक ही चली थी। १९६६ में केवल ३९% हड़तालें इतने कम दिनों के लिए हुई थीं। दूसरी ओर एक महीने से अधिक दिन चलने वाली हड़तालों का हिस्सा १९५६-६० के दौरान १२% ही था। १९६६ में बढ़कर यह २७% हो गया था। (पश्चिम बंगाल श्रम वार्षिक सग्रह और लेबर गैजेट)। हड़तालों की औसतन अवधि बंगाल में सबसे अधिक हो गई थी। १९५६-६० से महाराष्ट्र में हड़तालों की अवधि ४ दिन से बढ़कर १९६६-६७ में ६-७ दिन हो गई थी, जबकि बंगाल में इस दौरान यह संख्या १३.२ दिनों से बढ़कर २१.८ दिन तक पहुंच गई।

आन्दोलन के विकास का आधार मजदूरों की बढ़ती हुई पहलकदमी थी। १९६०-१९६५ के बीच ६०%हड़तालें किसी यूनियन के नेतृत्व के बिना हुई थी। वैसे भी इस समय, अर्थात १९६४ तक, बंगाल में मजदूरों के केवल २५% हिस्सा ही यूनियनों में संगठित था। इस बात पर ध्यान देना होगा कि यह स्वत:स्फूर्त हड़तालें सबसे अधिक इन्जीनियरिंग उद्योग और उन छोटे कारखानों में हुई जहाँ बाद में घेराव आन्दोलन ने भी व्यापक रूप धारण किया था।

मजदूर आन्दोलन के इस उभार के जवाब में मालिकों ने भी अपना हमला तेज कर दिया था :

	१९५९	१९६६	१९६७	१९६८
मिलबंदी				
● संख्या	७	३७	९०	८५
● मजदूर संख्या	५७१	२५६०	७३८३	५१०३
रिट्रेन्चमेंट				
● सख्या	६१	२०६	२५३	३२७
● मजदूर संख्या	३५१६	३७७९	६०५४	१२८०२
ले आफ				
● संख्या	९०	३३७	३२१	५२२
● मजदूर संख्या	१७९०६	१२११९२	६११५५	११७७६८

मिलबन्दी, ले ऑफ और रिट्रेन्चमेंट, जो १९६० से बढ़ रहे थे, १९६६ के बाद उद्योगों में आम मन्दी होने से और तेज हो गए। इस "विक्टीमाइजेशन" के खिलाफ लड़ने में परम्परागत तरीके नाकामयाब होने लगे। इस समय ३०% से ३५% हड़तालें इस विकटीमाईजेशन के खिलाफ थी और ३०% ३५% ट्रेड यूनियन अधिकारों के लिए थी। मालिक लम्बी हड़तालें बरदास्त करने की स्थिति में थे और उन्होने समझौता करने से मना कर दिया। अधिकांश विक्टीमाइजेशन के केसों को ट्राइब्यूनलों में भेजा गया जहाँ उन्हें निपटाने में वर्षों लगते हैं। हर साल ४४% से ५०% तक केसो का फैसला नहीं होता है।

पूंजीपतियों की ओर रुख :—

● **ज्योतिबसु** : चार वाणिज्य मंडलों द्वारा आयोजित सम्मेलन में उद्योगपतियों के सामने—"मुझे आशा है कि आप हमारे साथ सहयोग करेंगे एक बार जब हम सरकार में आ गए हैं तब हमें आपके साथ रहना है और आपकी दिक्कतों को सुलझाना है।

टाइम्स ऑफ इण्डिया (२० अगस्त, १९७७)

● **अशोक मित्रा** : (प० बंगाल के वाणिज्य मत्री) उद्योगपतियों के सामने –"जब तक आप हमसे ठीक प्रकार का व्यवहार करेंगे तब तक हम भी आपसे ठीक प्रकार का व्यवहार करेगे।"

हिन्दुस्तान टाइम्स (२१ जुलाई, १९७७)

इस समय आम मन्दी में अपना मुनाफा बनाए रखने के लिए मालिक वेतनों को काट रहे थे या बोनस देने से इन्कार कर रहे थे। छोटे कारखानों में परिस्थिति सबसे खराब थी। यहीं घेराव सबसे अधिक हुए।

घेराव आन्दोलन मालिकों के हमले के मुकाबले में शुरू किया गया था। जब मजदूर कानून और अदालत की भूलभुलैया से तंग हो गए तब उन्होंने सीधी कार्यवाही के रूप में "सिट-इन" हड़ताल और घेराव का सहारा लिया। एक रिपोर्ट के अनुसार जब एक घेराव में हिंसा हो गई और इस पर स्थानीय "पार्टी नेता" ने आपत्ति की तो एक मजदूर ने जवाब दिया, "२० साल से तुम्हारा तरीका असफल रहा है। हमें हमेशा ट्राइब्यूनल में ढकेल दिया जाता है जहां फैसला देने में देरी करते जाना एक आदत बन गई है। इसलिए **अब हमें अपना तरीका अपनाने दो।**"

घेराव में मजदूरों को महसूस होने लगा कि फैसला करना उसके हाथों में है न कि अदालत के। मालिकों के साथ जोर-जबरदस्ती करते समय (जो कभी-कभी होता था) मजदूर अपने काम अमानवीय परिस्थितियों का भी विरोध कर रहे थे। एक मजदूर ने एक रिपोर्टर से कहा "हम चाहते हैं कि उनको भी हमारी यातनाओं का, हमारी उस निराशा का अहसास हो जो इस भावना से उभरती

है कि वेतन के सिवाय काम का असल में हमारे लिए कोई अर्थ नहीं है।"

जब १९६७ में "संयुक्त मोर्चे की सरकार बनी तब एक ओर मालिक विक्टीमाइज़ेशन और वेतन कटौती कर रहे थे, तो दूसरी ओर मजदूर लड़ाकू संघर्ष पर उतारू थे। AITUC, (सी. पी. एम. और सी. पी. आई) तथा UTUC आर. एस. पी./एस यू. सी.) ने इस आन्दोलन का समर्थन किया था। लेकिन इसका असर सरकार में बने रहने की दृष्टि से अच्छा नहीं था। बंगाल में मिलबंदी की संख्या १९६६ में ३७ से बढ़कर १९६७ में ९० तक पहुँच गई इसके कारण बेकार हुए मजदूरों की संख्या भी २५६० से बढ़कर ७३८३ हो गई। पूँजी बंगाल छोड़कर भागने लगी। ७० प्रतिशत मिलबन्दी का कारण "श्रम अव्यवस्था" बताया गया। इस पर केन्द्रीय सरकार जो राष्ट्र भर के पूँजीपति वर्ग के सामाजिक हितों का रखवाला है, ने कार्यवाही की। किसी न किसी तरीके से मत्रीमंडल गिराए गए। फिर राष्ट्रपति शासन थोप दिया गया।

१९६९ में भी वामपंथी दलों के नेताओं के बीच घेराव की उपयोगिता के विषय में अलग-अलग राय थी। लेकिन आज १९७७-७८ में, सभी सत्तारूढ़ वामपथी दलों के नेता, घेराव का या तो विरोध कर रहे हैं और या चुप बैठे हैं। यह विरोध इसलिए नहीं हो रहा है क्योंकि घेराव में हिंसा का प्रयोग होता है। १९६९ में ही सी पी एम के नेता बसवपुनियाह ने कहा था, घेराव के सैकड़ों ऐसे उदाहरण हैं जिन्होंने पिछले दो तीन चालों में स्पष्ट रूप से दिखाया है कि, घेराव में हिंसा नही होती है। (पीपुल्स डिमोक्रेसी, जून १५, १९६९) यह सच है कि कुछ हिंसा भी हुई थी, और कई घेराव मुट्ठी भर मजदूरों ने अकेले ही करने की कोशिश की थी। लेकिन यह आन्दोलन का कोई आवश्यक पहलू नहीं था। अधिकाधिक घेराव में मजदूरों के बहुमत हिस्से ने अगुआई की और यह जन आन्दोलन के एक पहलू के रूप में ही उभरा था। तब आज इसका विरोध क्यों?

आज की स्थिति—औद्योगिक शान्ति

लेकिन आज सत्तारूढ़ वामपंथी दल विक्टीमाइजेशन के खिलाफ घेराव का नारा देने की बजाय पूँजीपतियों की मानवता जगाने की कोशिश कर रहे हैं। वामपथी मोर्चे की सफलताओं का व्यौरा देते हुए ज्योति बसु लिखते हैं, "हमने उनको समझाया है (पूँजीपतियों को) कि उन्हें मजदूरों की उचित माँगों को सहानुभूति की नजर से देखना चाहिए।" (मेंनस्ट्रीम, ३ जून, १९७८)।

सीधा संघर्ष करके मांग जीतने की कार्यनीति के बजाय, आज वामपंथी मोर्चा मेज पर बैठ कर ही समझौता करने का सुझाव दे

औद्योगिक शान्ति : उद्देश्य और सफलता

● **श्रम मंत्री के० घोष** ने कहा कि बंगाल के मजदूर आन्दोलन में देश के अन्य भागों से अधिक शान्ति थी। मजदूरों के गुस्से के बावजूद कानून और शान्ति को लेकर कोई समस्या नही थी औद्योगिक शान्ति और उत्पादन में रुकावट का कोई खतरा नहीं था ट्रेड यूनियनें बहुत जिम्मेदारी से पेश आ रही हैं।

इण्डियन एक्सप्रेस, (६ जून, १९७८)

● **उद्योग मंत्री कनाई भट्टाचार्य** — ने गर्व के साथ कहा कि बंगाल में औद्योगिक उत्पादन पर श्रम आन्दोलन का कोई असर नहीं था। केवल २% उद्योगों में ही अशान्ति थी।

स्टेटसमैन (१२ सितम्बर, १९७७)

● **ज्योति बसु** : "सरकार गर्व के साथ इस बात का दावा कर सकती है कि देश के अन्य हिस्सों की तुलना में पश्चिम बंगाल में औद्योगिक संबंध शान्तिपूर्ण और स्थाई हैं।"

"हम कोई भी कोशिश बाकी नहीं रहने देंगे।"

मेनस्ट्रीम)जून ३, १९७८

रहा हैं। ज्योति बसु के ही शब्दो में "हमने मैनेजर और मजदूर, दोनों पक्षों को हमसे आकार बात करने के लिए प्रोत्साहित किया है, और इस तरीके से बहुत से झगड़ों को निपटाया है।" (मेनस्ट्रीम, ३ जून)।

सब समझौता बातचीत असफल होने के बाद, सामान्य रूप से हड़ताल मजदूरों का एक आखिरी हथियार माना गया है, पर यह अधिकार भी पश्चिम बंगाल में इस्तेमाल नहीं किया गया है। इस बात का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इंजीनियरिंग, सूती कपड़ा और जूट उद्योगों में—जहाँ ६ लाख मजदूर काम करते हैं—पिछले वेतन समझौत की नियमित अवधि को समाप्त हुए एक या डेढ़ साल हो गए हैं। अभी नए समझौते के लिए बातचीत भी नहीं शुरू की गई हैं। उल्टा! जून १९७८ से इन तीन उद्योगों में मालिकों न महगाई भत्ते में २१.८० रुपए की कटौती लागू कर दी है! इसके खिलाफ भी यूनियनों ने एक दिन की सांकेतिक हड़ताल की और चुप बैठ गए। यह सच है कि, सरकार ने मजदूरों के फायदे के लिए कुछ कदम उठाए हैं, लेकिन इन बड़े मसलों पर संघर्ष न करना किसी भी वामपंथी यूनियन या पार्टी के लिए शर्मनाक बात है।

घेराव को नहीं हड़तालों को भी बढ़ावा नहीं मिल रहा है। पश्चिम बंगाल सरकार आज कहती है कि "हड़ताल" मजदूरों का "अन्तिम" हथियार होना चाहिए। क्या ऐसी नीति से मजदूरों की पहलकदमी या लड़ाकू संगठन बढ़ेगा?

ज्योति बसु ने उद्योगपतियों को आश्वासन दिया है कि, "गैर

ज़िम्मेदार ट्रेड यूनियनों" को बरदास्त नहीं किया जाएगा। (टाइम्स ऑफ इण्डिया, ६ मई, १९७८) इसका क्या मतलब है ? यही न कि हर आन्दोलन जो सरकार के बने रहने की परिस्थिति —"कानून और शान्ति" को भग करता है, बरदाश्त नहीं किया जाएगा। लेकिन अगर मजदूर लड़ेंगे तो क्या "कानून और शान्ति" बने रह सकते हैं ?

इस नीति का मतलब शायद सान्तालडीह बिजली घर के उदाहरण से शायद समझा जा सकता है जहाँ वामपंथी मोर्चे की सरकार ने मजदूर आन्दोलन को तोड़ दिया। सान्तालडीह में सी पी (एम एल) की ट्रेड यूनियन है। सरकार द्वारा चेतावनी देने पर भी यहाँ हड़तालें होती रही थी। इससे पूँजीपतियों के उत्पादन पर असर तो हुआ ही होगा। सरकार ने वहाँ दो हजार पुलिस वाले तैनात कर दिए, जबकि मजदूरों की कुल सख्या ११०० ही थी। १९ कार्यकर्त्ताओं का तबादला किया गया और सी पी एम के ५५ लोगों की नई भरती हुई। इस तरह से आन्दोलन पर काबू पाया गया।

आज बुरजुआ अखबार बगाल की स्थिति को इतने भयानक अक्षरों में नहीं लिखतीं, जितना कि १९६७-६९ के बीच करती थी। न ही कलकत्ते के मध्यम वर्गीय तबके, या केन्द्रीय सरकार या पुंजीपति इतने भयभीत नजर आते हैं। पर इस समर्थन के लिए सी पी आई (एम) को भारी कीमत देनी पड़ी है—एक तो औद्योगिक शान्ति बनाने के लिए समझौता वादी नीतियाँ अपनानी पड़ी हैं और दूसरे मजदूर आन्दोलन को एक संकुचित दायरे में रखना पड़ा है।

ऐसा नहीं है कि वामपंथी मोर्चे ने प्रगतिशील कदम नहीं उठाए हैं। राजनीतिक बन्दियों की रिहाई, १९६७-१९६९ में बाँटी गई जमीन की किसानों को वापसी, छोटे पैमाने पर "काम के लिए अनाज" कार्यक्रम, मजदूरों को बेकारी भत्ता मिला है। लेकिन क्या यह कदम पर्याप्त है ? एक क्रान्तिकारी पार्टी के लिए सत्ता में रहने का एक ही लाभ है—मजदूर आन्दोलन का विस्तार और उसका विकास। यदि सत्ता में रहने के लिए मजदूर आन्दोलन को बाधित करना अनिवार्य हो जाता है तो ऐसी सत्ता का मजदूर वर्ग के लिए क्या फायदा है ?

स्वर्ग पर हमला : पेरिस के कम्युनार्ड, १८७१

तारीख : १८ मार्च १८७१

जगह : पैरिस का 'मोमात्र' क्षेत्र, जहां राष्ट्रीय गार्ड की १७१ तोपें खड़ी हैं ..

समय : प्रात : सवा दस बजे...

अनिवार्य भरती राष्ट्रीय गार्ड विद्रोही बन चुका है; सरकार अपनी सेना के बल उनकी तोपें छीनने की कौशिश कर रही है। मजदूर बस्तियों के सैकड़ों लोग सेना को रोक रहे हैं। कुछ औरतें बड़ी छुरीयों के साथ तोपों के साज़ काट लेतीं हैं, और हंसती चिल्लाती हुई भीड़ सैनिकों को उनके घोड़ों से उतारती है। सैनिक भूके प्यासे लगते हैं.. उनको रोटी और अंगूरी दी जाती है। जनता ने तोपों को दोबारा हासिल कर लिया है .।

परन्तु सेना के मुख्य टोलियाँ जनरल लकोम्त के आदेशों की इन्तजार कर रहीं हैं। पहाड़ी के ऊपर से जनरल साहब ने मजदूरों और राष्ट्रीय गार्ड के जवानो की जीत देखी है, गार्ड की एक टोली को सैनिकों से बातचीत करने के लिए सफेद रूमाल उड़ाए अपनी तरफ बढ़ते हुए देखा है। गार्ड के जवान अपनी बन्दूकों को नतीजे की इन्तजार में उल्टा कर चुके हैं...।

प्रात: दस पच्चीस ..

जनरल साहब देखते हैं कि शायद मेरी टोली हौंसला खो रही है—उनको समझाने के लिए खुद आदेश देने उतर आते हैं.. औरतों और बच्चों की भीड़ देखती हैं कि जनरल लकोम्त गोली चलाने का आदेश देने वाले हैं। उठ भागने के बजाय वे सैनिकों के सामने लपक कर जा पहुंचते हैं.......—"**गोली मत चलाना !**" जनरल का आदेश गूँजता हुआ आता है...।

"**फायर की तैयारी करो !**"

सैनिक तैयारी करते हैं। भीड़ अचानक रुक जाती है।

"**निशानी बाँधो !**"

बन्दूक के कुन्दे सैनिक के कन्धों में जम जाते हैं, नालीयां सीधी हो जातीं हैं। भीड़ में एक बार कम्पन की लहर दौड़ती है, मगर कोई हिलता नहीं है।

एक पल-भर इस दृश्य पर गहरी खामोशी छा जाती है। फिर, अचानक,

"फायर !"

तड़पता हुआ सदेह। विद्रोही गार्ड के जवान गोली चलाने का बदला चुकाने की तैयारी करते हैं। लेकिन ..

सैनिक गोली चलाने से इन्कार कर देते हैं। पहले एक आदमी बन्दूक को निशाने से अलग उठा लेता है, फिर दस, फिर सैंकड़ों ऐसा करते हैं। महनतकशों की इस भीड़ के ऊपर से मौत की मंडराती हुई छाया अचानक जैसे गायब हो जाती है। जनरल गुस्से भरे आवाज से सैनिकों को टोकते हैं, पिस्तौल लिए उनको धमकाते हैं. **"फायर करो !"** तीन बार वह आदेश चिल्लाता है, **"इज्जत के लिए फायर करो !"**। लेकिन सैनिक अब हिलने के लिए भी तैयार नहीं।

जनरल का रोष अब खौल रहा है **"इस नीच वर्ग इस कचरे के सामने क्या तुम घुटने टेकने जा रहे हो ?"** एक सैनिक उसे जवाब देता है, "हां हम यही काम करना चाहते हैं", और अपनी बन्दूक नीचे फेंक देता है। अब लालांद नामक एक गार्ड का कप्तान, जो रूमाल लिए बात करने आया था, जनरल के कन्धे पर हाथ रख कर कहता है, "हार तो तुम्हें ही माननी होगी !" जनरल हाथ-पैर मारते हुए अब पुलस से अपील करता है. "मुझे बचाओ ! गोली चलाओ ! फायर !"

लेकिन सैनिक, गार्ड और भीड़ पुलिस को गिरफ्तार कर लेते हैं।

प्रातः साढ़े दस जनरल साहब झुक जाते हैं। अब जाकर वह परिस्थिति का महत्व समझ रहे हैं। सैनिक शक्ति में उनका बिश्वास, जनता के प्रति उनकी नफ़रत, उनकी सारी तमन्नाएं और सपने, इस कठोर सच्चाई के सामने हवा में उड़ गई हैं - वह बन्दी हैं।

(पैरिस, मार्च १८ का एक आँखों देखा हाल)

भूमिका

१८ मार्च से २८ मई, १८७१। बहत्तर दिन जब पैरिस के मजदूरों ने क्रान्ति का त्यौहार मनाया जो दुनियां के सर्वहारा का आदर्श बन चुका है। त्यौहार का नाम : पैरिस कम्यून। १७८९, १८३०, १८३४, और १८४८ में फ्रांस, और विशेषकर पैरिस की जनता ने सामाजिक क्रांति के लिए संघर्ष किया था। हर बार जन-संघर्ष की तरंगों के ऊपर राजनीतिज्ञ सवार हो चुके थे। १८४८ के जून में वही नेता जिन्हें तीन मास पूर्व मजदूरों ने सत्तारूढ़ बनाया था, ने पैरिस की मजदूर बस्तियों की बम्बारी करवा के, ३००० लोगों को मार कर, क्रांति की परम्परा को हमेशा के लिए दबाने की कोशिश की थी।

१८५२ में सदर लूई बोनापार्ट ने गणतंत्र रद्द करके अपने आप को "सम्राट नपोलियन III" घोषित किया। १८५२ से १८७० तक पूंजी का बेलगाम विस्तार हुआ। पैरिस में रेल के यार्ड, इन्जन निर्माण, इन्जीनियरिंग, व रसायन के कारखाने उत्पन्न हुए। उसकी आबादी १२ लाख से साढ़े १८ लाख तक बढ़ गई। उसे 'सुन्दर' बनाया गया : पुरानी बस्तियों को उखाड़ कर हजारों मजदूर परिवारों को शहर के उत्तरी हिस्से में जबरदस्ती बसाया गया। किसी आगामी संकट का सामना करने के लिए शहर के कुछ मुख्य क्षेत्रों में चौड़ी सड़कें बिछाई गईं, ताकि क्रांतिकारी मोर्चाबन्दी की गुंजाईश घट जाए, और तोपों की बम्बारी के लिए रास्ता साफ हो।

लेकिन १८७१ का फ्रांस आज के भारत से कहीं ज्यादा पिछड़ा था। ज्यादातर मजदूर छोटे कारखाने में काम करने वाले थे। कारीगरों, दिहाड़ी मजदूरों और छोटे दुकानदारों की आबादी बहुत ज्यादा थी।

१८६० के दशक में यूरोप के मजदूर आन्दोलन में तेजी आई, हड़तालों की लहर फैल गई। १८६४ में कुछ फांसिसी व अंग्रेजी मजदूरों ने लंदन में "अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर एसोसिएशन" (प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय) की स्थापना की, जिसमें मार्क्स, एंगेल्ज व बाकूनेन जैसे क्रांतिकारी लोग भी शामिल हुए। नपोलियन के शासन-काल के अंतिम दो वर्षों में जनवादी आन्दोलन भी आगे बढ़ा। पब्लिक मीटिंगें खूब चलीं और क्रांतिकारी चेतना उभरने लगी। सम्राट के समर्थक चाहते थे कि गणतंत्र की मांग रोकने के लिए नपोलियन की शान बढ़ाई जाए। जुलाई १८७० में किसी कारण जर्मनी के विरुद्ध लड़ाई लड़ने का मौका मिला, और सम्राट ने चुनौती स्वीकार कर ली। यह युद्ध फ्रांस के गले-सड़े राज्य ढांचे के लिए घातक था। हफ्तों में ही सेना को करारी हार, और सम्राट को आत्म-समर्पण भोगनी पड़ी। ४ सितम्बर को पैरिस में जन-क्रांति भड़क उठी और गणतांत्रिक नेताओं का एक मंत्रीमंडल बना।

राष्ट्रीय गार्ड

फ्रांस में एक परम्परा थी, कि राष्ट्रीय संकट काल में जन-आबादी के बल पर एक अनिवार्य-भरती सेना बनेगी। १७८९ की क्रांति के समय यह भरती पहले तो सिर्फ मध्यवर्गों तक सीमित रही, परन्तु जब युद्ध छिड़ गया तो "राष्ट्रीय गार्ड" में गरीब महनतकश भी लिए गए। १८७० में भी ऐसा ही हुआ। देश-प्रेम की लहर में करीब-२ तीन लाख नागरिक 'गार्ड' में भरती हुए, जिसका अधिकांश

हिस्सा मजदूरवर्गीय था। "सारे नागरिकों को हथियार मिले"— जैसी माँगें लोकप्रिय बनीं। परन्तु सरकार इस सर्वहारा राष्ट्रीय गार्ड से डरती थी, युद्ध की ट्रेनिंग और आधुनिक हथियार देने से कतराती थी। बुर्जुआ नेतागण फ्रांस के संकटग्रस्त पूंजीवाद को बचाने के लिए जल्द ही जर्मनी के साथ समझौता करना चाहते थे। वे जर्मन सेनाओं की बनिस्पत पैरिस के सर्वहारा वर्ग से कहीं ज्यादा चिन्तित थे। छिपाव के साथ जनता से यह कहते हुए कि हम जर्मनी के सामने कभी घुटने नहीं टेकेंगे, तीयर नामक प्रधान मंत्री और उसके सहयोगियों ने २८ जनवरी १८७१ को जर्मन सरकार के साथ समझौता मंजूर कर लिया। पैरिस के किलों को दुश्मन के हाथ सौंप देना था, फ्रांस की सेना का निरस्त्रीकरण होना था। जर्मनों ने राष्ट्रीय गार्ड के निरस्त्रीकरण की भी माँग की, परन्तु यह देखते हुए कि इस काम के लिए हमारी सेना को स्वयं फ्रांस की राजनीति में दखल देना होगा, इसे वापस ले लिया। समझौते की कानूनी मंजूरी के लिए फ्रांस-भर में नए संसद का चुनाव ८ फरवरी को होना था।

क्रांति की ओर ..

बीते हफ्तों में पैरिस का मिजाज तेजी से क्रांति की ओर बढ़ता जा रहा था। सितम्बर १८७० में जिस आन्दोलन ने लुई नपोलियन के शासन को समाप्त किया था, उसमें देश भक्ति के साथ-साथ सामाजिक प्रत्याशा की लहर भी फैल गई थी। मजदूर इस प्रकार सोचते थे :— अब गणतंत्र बन चुका है, इस सरकार को मजदूरों पर पूरा-२ भरोसा होना चाहिए, और उनके पक्ष में सामाजिक सुधार लाने चाहिए, और जनता की क्रान्तिकारी उत्साह व शक्ति के बल पर जर्मन सेना को फ्रांस से खदेड़ देना चाहिए। पैरिस-भर में इन बातों पर एक विशाल बहस चलने लगी। सितम्बर १८७० में ही बीस मुख्य मोहल्लों में सतर्कता कमेटियां बन गईं, जिस काम में "प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय" की पैरिस शाखा ने भी योगदान किया। ये कमेटियां मजदूर बस्तियों की मीटिंगों और क्लबों पर आधारित थीं। इन कमेटियों ने शीघ्र ही ,'बीस मोहल्लों की केन्द्रीय कमेटी" बना डाली जिसने सरकार के सामने जनमत प्रकट किया। सरकार से कोई जवाब न मिलने पर इस कमेटी ने "लाल इश्तेहार" प्रकाशित किया जिसमें माँगे दी गईं :—**पुलिस फोर्स रद्द करो**, उसकी जगह सिर्फ राष्ट्रीय गार्ड होनी चाहिए; **सारे नागरिकों को हथियार मिलने चाहिए**; पैरिस की सुरक्षा जनता के हाथों सौंप दी जाए; जरूरी सामान की राशन हो; निजी गोदामें खोल दिए जाएं; और देश भर में एक क्रांतिकारी सेना तैयार की जाए। ऐसी मांगें बहुत लोकप्रिय थीं।

शुरूआत में तो मजदूर क्लबों की सदस्यता को कुछ राजनीतिक कार्यकर्ता लोग सीमित रखते थे, लेकिन शीघ्र ही सर्वहारा वर्ग की आत्मचेतना इतनी बढ़ गई कि बीसियों क्लब उत्पन्न हो गए जिसमें हजारों मजदूर हिस्सा लेने लगे। क्लबों में मीटिंग चलाना एक आन्दोलन बन गया। बड़े जोश व उत्सुकता के साथ तीखे विवाद होते थे। युद्ध को कैसे चलाया जाए, पूंजीपतियों के साथ क्या सलूक किया जाए, खाने-पीने के सामान का कैसे बटबारा हो, आदि-२ जैसे विषयों पर खुली बहस चलती थी।

मार्च तक की कहानी ..

ऐसे वातावरण में जब २८ जनवरी के समझौते की खबर पैरिस में पहुंची, तो जहां उच्च वर्गों में खुशी मनाई गई, तो सर्वहारा हैरान और चकित रह गए। किसी ने यकीन नहीं किया था कि सरकार वास्तव में पैरिस की बहादुरी को ठुकरा सकती थी। महीनों से बर्दाश्त किए कमियाँ, ठण्ड, दुश्मन की बमबारी, सब धूल में मिल गया। और यह तो केवल पहली चोट थी। ८ फरवरी को हुए चुनावों में पैरिस और कुछ मुख्य शहरों को छोड़कर फ्रांस-भर से एक अति प्रक्रियावादी संसद चुना गया। कट्टर मजदूर विरोधी तीयर दोबारा प्रधान मंत्री बना। जर्मन सरकार को हरजाना देने के लिए सरकार ने मजदूरों और पिछड़े मध्यम वर्गों से ही भारी रकम निचोड़ने की योजना बनाई। युद्ध काल की सारी रिआयतें वापस ली गईं, जैसे पुराने कर्जों में कुछ छूट, गिरवी वस्तुओं की बिक्री पर रोक, आदि। राष्ट्रीय गार्ड की दिहाड़ी रद्द कर दी गई और उसके जवानों से गरीबी के सबूत मांगे गए (जिस कदम को वे बहुत ही अपमानजनक मानते थे)। यह भी डर फैल गया कि संसद का राजनीतिक बहुमत गणतंत्र को समाप्त कर सकता है। मोहल्ला सतर्कता कमेटियां, ट्रेड यूनियन संघ, और प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय (पैरिस शाखा) ने एक व्यापक मीटिंग के द्वारा एलान किया कि आगे से" हम तमाम जरियों से पूंजीपतियों के विशेषाधिकारों की, उसकी शासकवर्ग होने की अवस्था की समाप्ति के लिए, और मजदूरों द्वारा राजसत्ता हथियाने की ओर कार्य करेंगे। **एक शब्द में, हम सामाजिक समानता चाहते हैं। आगे से कोई मालिक न होंगे और न ही कोई सर्वहारा वर्ग—कोई वर्ग ही न रहेंगे।"**

मगर सबसे लड़ाकू प्रवृत्ति तो राष्ट्रीय गार्ड में उभर रही थी। युद्ध समाप्ति के बाद कई मध्यमवर्गीय गार्ड पैरिस छोड़ चुके थे, और गार्ड में मजदूरों की संख्या और भी बढ़ चुकी थी। गार्ड में जनवादी वातावरण था, उसके अफसर चुने जाते थे, और उसकी एक-एक टोली के प्रतिनिधियों पर आधारित केन्द्रिय कमेटी थी। २४ फरवरी को इसने सरकार को खुली चेतावना दी :— राष्ट्रीय गार्ड के निरस्त्रीकरण का बलपूर्वक विरोध किया जाएगा, अगर जर्मन सेना ने पेरिस में प्रवेश किया तो उसका विरोध किया जाएगा, गार्ड के सर्वोच्च अफ़सर को गार्ड ही चुनेंगे।

९ मार्च, १८७१ को एक युवा मजदूर ने अपने गांव में रिश्तेदारों को एक पत्र लिखा—"हम शान व समारोह नहीं चाहते हैं, न ही लूट मार। हम एक संयुक्त गणतंत्र चाहते हैं, धार्मिक शिक्षा का अंत, तमाम स्थाई सेनाओं की समाप्ति, हरेक नागरिक के लिए अपने मोहल्ले में हथियारबद रहने का अधिकार, तमाम पुलिस शक्तियों की समाप्ति। ...जिन्होंने युद्ध घोषित किया, जिन स्वार्थियों ने समझौता किया, उनसे हरजाना लिया जाए। देहात के लोगों से कह दो कि हम गृहयुद्ध नहीं चाहते हैं, मगर यदि वे डकैत (पूंजीपति) हमें यहां से खदेड़ने की कोशिश करेंगे, तो हम पैरिस को हारने के पहले उसे जला डालेंगे।"

१८ मार्च, १८७१

सरकार ने फैसला लिया था कि अब राष्ट्रीय गार्ड की तोपें बरामद होनी चाहिएं। मगर उसकी चालबाजी बिल्कुल नाकामयाब रही, जैसे ऊपर वर्णन दिया गया है। दो जनरल, जिन्होंने जनता पर गोली चलाने का आदेश दिया था, अपने सैनिकों के ही गोलियों द्वारा मारे गए। पैरिस भर में विशाल जन आन्दोलन भड़क उठा। "सरकार बसत की वायु में खड़े पानी जैसे सूख कर गायब हो गई" आम जनता की पहल ने गार्ड की केन्द्रीय कमेटी को भी चकित छोड़ दिया।

दोपहर के ३ बजे मंत्री मंडल की मीटिंग विदेश मंत्रालय में चल रही थी जब बाहर से कुछ गार्ड की टोलियां ढोल बजाते हुए आते सुनाई दिए। मीटिंग अचानक ठप्प हो गई और प्रधान मंत्री महोदय तीयर पिछले जीने से निकल भागते हुए नजर आए। जब गार्ड की एक टोली पुलिस हेडक्वाटर पहुँची तो वहां पर सिर्फ चौकीदार मिला। शाम तक प्रधानमंत्री का आदेश प्रचलित हो चुका था कि अब से सरकार वरसाई (पैरिस से २० कि. मी. दूरी पर राजतंत्र का प्राचीन सिंहासन-स्थान) से काम चलाएगी।

पैरिस अब सर्वहारा वर्ग के हाथों में पड़ चुका था।

पैरिस कम्यून

"राजधानी के सर्वहारा, शासक वर्गों की विफलताओं व गद्दारी से घिरे हुए, समझ चुके हैं कि अब वक्त आ चुका है कि वे सार्वजनिक मामलों को अपने ही हाथों में लेकर स्थिति को बचाएं .. मजदूर, जो सब कुछ पैदा करते हैं और किसी भी चीज का आनन्द प्राप्त नहीं कर पाते, जो अपने ही श्रम पसीने की उपज के संचयन के बीच गरीबी भोगते हैं, क्या वे हमेशा के लिए इस अत्याचार के शिकार बने रहेंगे? ...सर्वहारा की मुक्ति का समय आ चुका है...वह अपने भाग्य को अपने हाथों में लेकर, सत्ता छीनकर अपनी जीत की नींव डालेगा।' २१ मार्च को गार्ड कमेटी ने ऐसा लिखा। २६ मार्च को कमेटी ने पैरिस में चुनाव का बन्दोबस्त किया। भारी संख्या में क्रान्तिकारी मजदूर चुने गए। एक मजदूर ने कहा "मैं लाल में से सबसे लाल को वोट दे रहा हूँ, लेकिन, खुदा के नाम अगर लाल झन्डे से भी ज्यादा क्रान्तिकारी कोई चीज होती, मैं उसे ही चुनता!" २८ मार्च को पैरिस कम्यून घोषित किया गया।

अप्रैल १९ को कम्यून ने एक प्रोग्राम में लिखा: "सारे मैजिस्ट्रेट और सरकारी नौकर जनता द्वारा चुने जाएंगे, उन पर नियंत्रण रहेगा और उनको वापस बुलाने का अधिकार होगा। व्यक्तिगत आजादी की अप्रतिबद्द गारंटी है.. नागरिक लोग कम्यून के मामलों को निरंतर हस्तक्षेप करेंगे—अपने विचारों को पूर्ण आजादी से प्रकट करने के द्वारा, अपने हितों की पूर्ण रक्षा करने के अधिकार के द्वारा।" "सर्वहारा" नामक अखबार ने १९ मई को लिखा: (चुने गए कम्यून सदस्यों के प्रति)—"खबरदार कि तुमने जनता के नाम से और उनके स्थान कोई फैसला लिया तो...तुम नौकर हो, राजा बनने की ख्वाईश मत रखो जनता मसीहों से तंग है, अब से वह तुम्हारी कार्यवाहियों से ही तुम्हें परखेगी।" "कम्यून कलब" ने अपने उसूलों और नियमों में लिखा .." जनता को कभी भी अपने डेलीगेटों का निर्देशन करने का अधिकार त्यागना नहीं चाहिए जनता! सीधे तौर से अपना ही शासन चलाओ, अपनी मीटिंगों और अखबारों के द्वारा अपने डेलीगेटों पर दबाव डालो .. क्रांति के पथ पर ज्यादा दूर चलना असंभव है।"

बस्तियों में बीसियों क्लब खिल गए। रोज मीटिंगें चलती थीं। बड़े-२ गिरजाघरों को मीटिंग स्थान बना दिये गए और उनके पवित्र से पवित्र जगहों पर ये लोग अपनी बहस चलाते। औरतों ने अपने विशेष और अलग क्लब बनाए। एक औरत ने कहा, "मर्द सारे बुजदिल हैं . कहते हैं कि हम दुनियां के मालिक हैं, और हमेशा कुड़कुड़ा रहे हैं। उन्हें वरसाई की भीड़ में जाकर मिल जाना चाहिए, औरतें मोरचों को सम्भालेंगी, और इन्हें दिखाएगी कि हम उनके शासन को अब नहीं चलने देंगे।" किसी दूसरे नारी क्लब में एक औरत ने भाषण दिया 'नागरिक बहनों! विवाह प्राचीन मानव जाति की सबसे बड़ी गलती है। पत्नी होना गुलामी के समान है। क्या तुम गुलाम होना चाहती हो?" (जवाब: नहीं! नहीं!) "किसी को अपनी आजादी बेच देने का अधिकार नहीं होना चाहिए। विवाह अपराध घोषित किया जाए!" किसी और मीटिंग में कहा गया कि तमाम पादरीयों को गिरफ्तार करो, गिरजाघरों को किराए पर छोड़ दो। सजा-ए-मौत का विरोध प्रकट करते हुए एक मोहल्ला कमेटी ने "गिलोटीन" नामक सर काटने वाली मशीन को मैदान में

जलाया। प्रथम सम्राट नयोलियन के आदेश पर बना राष्ट्रवाद और मिलिट्री शान का स्मारक, "वांदोम स्तम्भ" १६ मई को सभा में गिराया गया।

सर्वहारा वर्ग की आत्म गतिविधि फल-फूलने लगी। तरह-तरह के कारीगरों ने सहकारी संघों के आधार पर उत्पादन जारी रखने का प्रयास किया। दर्जीयों, मोचीयों, होटल मजदूरों आदि-आदि ने कम्यून पर प्रभाव डाला कि वह सहकारी संघों से ही अपना माल मंगवाए। १४ मई तक ४३ ऐसे संघ बन चुके थे। मुख्य गोला-बारूद फैक्टरी के मजदूरों ने एक चुनवित मजदूर सभा बना डाला और उत्पादन को इस प्रकार अपने आप चलाया। वहां शिक्षा के क्षेत्र में अन्य मोहल्लों में सुधारक लोगों ने शिक्षा-सुधार आन्दोलन चलाया। गार्ड के जवान स्कूलों से पादरीयों और मठवासिनियों को खदेड़ कर उन्हें क्रांतिकारियों के हाथ सौंप देते थे। आम विचार यह था कि कोई ऐसी शिक्षा नहीं होनी चाहिए जोकि ज्ञान को खानों में बांट कर सामाजिक अलगाव और वर्ग समाज को बढ़ावा दे। नारी शिक्षा पर बहुत जोर दिया गया। इसके लिए एक विशेष, नारी सदस्यों का आयोग स्थापित हुआ। फैक्टरीयों के बगल में छोटे बच्चों की नर्सरीयाँ बनाने का प्रस्ताव रखा गया।

पैरिस के कलाकारों ने एक कलाकार महासंघ बनाया। "जागो जागो सर्वहारा" नामक अन्तर्राष्ट्रीय गान के लेखक, यूजेन पोतीयर का इस संघ के उसूल बनाने में हाथ था। इसके उद्देश्य थे कलाकार की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रकटन, जनता को कला से परिचय, और एक पत्रिका शुरू करनी जिसमें तमाम कला की शैलियां जानकारी व मत का विनिमय करतीं। मगर इन सारे प्रयोगों को जड़ पकड़ने के लिए समय ही न था।

मूल्यांकन

पैरिस कम्यून सामाजिक क्रांति का एक प्रयोग था। इसके कई ऐसे सुधार थे जोकि आज मंद व उदारवादी मानें जाएंगे, क्रान्तिकारी नहीं। लेकिन वजनदार बात तो यह थी कि ढाई महीनों के लिए सर्वहारा वर्ग गतिशील और सक्रिय हो गया। उसने महसूस किया कि वर्ग जीवन और मजदूरी समाप्त हो सकती है। मार्क्स ने कम्यून के बारे में यह कहा कि, "उसका सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक कदम तो उसका अस्तित्व ही था"। "यह इस या उस प्रकार के राजसत्ता के खिलाफ़ क्रांति नहीं थी। यह **राज्य ही** के खिलाफ क्रांति थी, जिसमें जनता ने अपने ही सामाजिक जीवन को पुन: हासिल किया . ." "कम्यून सुनिश्चित रूप से राज्य को नकारती है, वह १९वी सदी की सामाजिक क्रांति की शुरूआत है।"

लेकिन सर्वहारा क्रांति के दिन गिने चुने थे। उसके जीवित रहने की शर्त यही थी कि बाकी बड़े शहर भी कम्यून घोषित करते, कि देहातों में उनको कुछ समर्थन प्राप्त होता। लेकिन हालांकि मार्च में 'लीयोन,' 'मारसेई' व कुछ अन्य शहरों में विद्रोह हुए, ये शीघ्र ही कुचल दिए गए। पैरिस के मजदूरों ने गावों में प्रचार करने का प्रयास किया, मगर छोटे सम्पत्तिदारों की संख्या व सामाजिक वजन ज्यादी थी - देहात बिल्कुल निष्क्रिय रहे क्योंकि ये लोग क्रांतिकारी गणतंत्र में कोई रूचि नहीं रखते थे। साथ में विदेशी शक्तियाँ कम्यून का अंत देखने के लिए बेचैन थीं। रूस के जार ने जर्मन सरकार से अपील की कि वह वरसाई मंत्रामंडल की तैयारीयों में योगदान करे। जर्मन प्रधान मन्त्री बिज्मार्क ने तीयर को धमकी दी कि दमन के काम में देरी हुई तो जर्मन सेनाओं को दखल देना होगा। यह गारंटी की बात है कि यूरोप के मुख्य देशों में सर्वहारा क्रांति न होती तो फ्रांस के मजदूर कुचल दिए जाते ... प्रति क्रांति के बाद, मार्क्स ने लिखा, "आधुनिक युग के सबसे घमासान युद्ध के बाद, बिजयी और पराजित सेनाए सर्वहारा वर्ग के हत्याकांड के लिए एक हो जातीं हैं : इस घटना से यह नहीं साबित होता है, जैसे बिज्मार्क सोचता है, कि नए समाज का आखिरी दमन हो चुका है, बल्कि यह कि पूंजीवादी समाज धूल में मिल रहा है पुराने समाज की सर्वश्रेष्ठ बहादुरी होती है राष्ट्रीय युद्ध, और आज यह सरकारी चालबाजी साबित हो चुका है, वर्ग संघर्ष को टालने के लिए, जिसका नकाब तब खुलता है ज्यों ही बर्ग संघर्ष गृहयुद्ध बन जाता है। वर्ग शासन आज राष्ट्रीय वेश नहीं पहन सक रहा है, तमाम राष्ट्रीय सरकारें सर्वहारा वर्ग के खिलाफ एक हैं!"

मौत

"कानून और व्यवस्था" की सेना ने मई २१ को पैरिस में प्रवेश किया। मगर इसे जीतने में ७ दिन लगे। इन दिनों में और जीत के बाद, पूंजीवाद ने दिखा दिया कि मजदूरों के प्रति जा उसका नफ़रत है उसके सामने विदेशी सरकारें तो सगे भाई हैं। समूचे फ्रांस-जर्मन युद्ध में इतने लोग नहीं मरे जितना इन १०-१५ दिनों में जब पूंजी ने सर्वहारा पर अपना बदला चुकाया। सवा लाख सैनिक पागल कुत्तों की तरह पैरिस के मजदूरों पर टूट पड़े। बच्चों बुजुर्गों, औरतों, किसी पर उनका रहम न था। १० दिनों में २५००० मजदूर, लोग मारे गये। सड़कों व नालियों में लाशों की ढेर बन गई। ५०,००० लोग गिरफ्तार हुए और वर्षों तक जेलों में सड़ते रहे।

और पैरिस के कम्यूनार्ड ने अपना खून पानी की तरह बहाया। एक-२ बस्ती के लिए तीखी लड़ाईयां लड़ी गईं, एक-२ गली

पर मोर्चे लग गए, एक-२ इमारत से आखिरी दम तक बुर्जुआ सेना का मुकाबला हुआ। अपना गुस्सा प्रकट करते हुए, "न्याय महल" (सुप्रीम कोर्ट), पुलिस हेडक्वाटर परम्परागत राजतंत्र के महल को —इन सभी में मजदूरों ने आग लगा दी।

२८ मई १८७१ रविवार था। सुबह को यूजेन वारलैं, भूतपूर्व जिल्दसाज, अराजकतावादी, कम्यून सभा का सदस्य, अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर एसोसिएशन का कार्यकर्ता, कुछ ५० साथियों को लेकर, लाल झण्डा उड़ाए, एक अन्तिम मोर्चे पर पहुंचा। वहां मोर्चा टूटा हुआ मिला, और कम्यूनार्डों को भाग निकलना पड़ा। दोपहर को वारलैं गिरफ्तार हुआ। उसे सैनिकों ने बन्दूकों के कुन्दों से देर तक मारा फिर उस पर सजा पास करने के लिए ले गए। बाहर निकलते उसकी और ज्यादा पिटाई हुई वह मरने को हो रहा था, एक आंख अपनी जगह से बाहर टंग रही थी। मुश्किल से वह सीधा खड़ा हुआ। गोली सीने से निकलने के पहले उसने "कम्यून जिन्दाबाद!" का नारा दिया। २ बजे दोपहर को, "बेलवील" नामक मजदूर मोहल्ले में, एक आदमी ने कम्यून के आखिरी मोर्चे को १५ मिनटों के लिए सम्भाला। वह अपनी अन्तिम गोली चलाकर चल पड़ा।

पैरिस कम्यून का दम घुट चुका था।

पत्राचार

● आपके मासिक फिलहाल को मैंने पढ़ा। पढ़कर खुशी हुई और मैंने कुछ ऐसा महसूस किया किया कि यह पत्र महनतकशों के आन्दोलन की सही तस्वीर जनता के आगे रख रहा है। इसलिए मैं भी एक मजदूर होने के नाते एक लघु कविता इसमें प्रकाशित करने के लिए भेज रहा हूं। कविता का शीर्षक है "आजादी।"

आजादी

कहते हैं मिलीं सच्ची आजादी, तीस बरस आजादी के बाद।
अब भी न सम्भले अगर इतनी बरबदी के बाद॥
तो फिर वही पहले से, जुल्म और अत्याचार होंगे।
इतने वीर सपूत वतन पर, मर मिटने के बाद॥
कब तक धूल आती रहेगी झूठी तसल्लीयों की।
या आई नहीं आजादी सच्ची, अभी आजादी के बाद॥
वो वक्त भी क्या वक्त था, जिसे कहते थे गुलामी।
अब गुलाम हो गए हैं इस आजादी आने के बाद॥
उस वक्त तो जुल्म थे ही, अब भी वही हालत है।
कि रोटी नहीं मिलती भर पेट, सख्त मजदूरी करने के बाद॥
कब खतम होगा महंगाई का, कब सफाया होगा बेकारी का।
कीमत पूरी नहीं मिल पाती मेहनत की, तीस दिनों के बाद॥

—एक मजदूर साथी
सुरेन्द्र कुमार भाटिया (बाटा) फरीदाबाद

● फिलहाल मंडल को हार्दिक शुभ कामनाएं,
आशा है आप अपने प्रयास में सफल होंगे।

मैं यह दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूं कि श्रमिक आन्दोलनों में बाहरी नेतृत्व की वजह से सशक्त संगठन श्रमिकों के नहीं हैं। क्योंकि बाहरी नेता अपना पहला कर्त्तव्य यह समझते हैं कि वह अपने दल की साख बढ़ावें, दूसरा वे अपने ढंगों से श्रमिकों को इस्तेमाल करने में सफल हो जाते हैं। उदाहरण के लिए कानपुर के कई श्रमिक नेता, एम पी, एम एल ए, इत्यादि, लिए जा सकते हैं।

श्रमिकों को इस्तेमाल करने का मुख्य कारण है, उनका अशिक्षित होना। इसके सम्बन्ध में सरकारी प्रयास भी पूर्ण रूप से सफल नहीं रहे हैं। श्रमिकों के लिए विशेष रूप से "श्रमिक शिक्षा" का प्रबन्ध किया गया जिसमें प्रबन्धकों द्वारा उपेक्षा की नीति श्रमिकों के इस्तेमाल किए जाने का एक और कारण हैं। श्रमिकों की समस्याओं पर तीसरे नम्बर पर ध्यान दिया जाना है।

कानपुर के श्रमिक आन्दोलन को सुदृढ़ बनाने हेतु सरकारी प्रयास अधूरे और खोखले रहे हैं (जैसे ट्रेड यूनियनों को आर्थिक सहायता, ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं को ट्रेनिंग देना, वर्कस कमेटियों का निर्माण कराना, भागीदारी कमेटियों का बनाना, और प्रदेशीय सरकार का आज तक ट्रेड यूनियन बिल का न पेश करना) इसलिए श्रमिकों का सही प्रतिनिधित्व करने की क्षमता किसी ट्रेड यूनियन में नहीं है।

वर्तमान सदर्भ में श्रमिक यूनियनें अपन बुनियादी लक्ष्य को छोड़ कर केवल श्रमिकों को प्रबन्धों से मुकदमा लड़ाना ही उचित समझते हैं। मालिक इसमें सक्षम हैं। आज-कल कानपुर में सभी कारखानों में लेबर आफिसरों की संख्या में बढ़ोतरी हो रही है। समय समय पर सामूहिक माँग, जैसे बोनस, अतिरिक्त महंगाई भत्ता (वेतन जाम) इत्यादि, मसलों को लेकर कुछ दिनों से श्रमिक कार्य-कर्त्ता ऐसा महसूस कर रहे हैं कि वर्तमान समस्या का हल सामूहिक रूप से संगठित होकर ही किया जा सकता है।

[शेष पृष्ठ ४४ पर]

Regd. No. PT 129, 5th December 1972

स्वर्ग पर हमला   इन्क़लाब जिन्दाबाद !

पैरिस के कम्युनार्ड—१८७१—दे० पृष्ठ ३८

[पृष्ठ ४३ का शेष]

जिन सवालों को संयुक्त रूप से सभी ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं हल करने का प्रयास किया है उसमें श्रमिकों को अवश्य सफलता मिली है।

उपरोक्त तथ्यों पर नजर डालते हुए बहुत ही स्पष्ट है कि बाहरी नेतृत्व समाप्त हो, श्रमिक संगठित हों, सभी ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ता संगठित हों, तभी श्रमिकों का, उद्योग का, और देश का हित सामूहिक रूप से होगा। अन्यथा एक पक्षीय हित होता रहेगा, जो न होना चाहिए।

छोटेलाल जायस श्रमिक शिक्षक
एलगिन नं० १ कानपुर

नोट: —

- छोटे लाल जी से यह पूछना चाहेंगे कि क्या उनके विचार में सरकारी कानूनों द्वारा मजदूरों की समस्याएं हल की जा सकती हैं ?

— फिलहाल संपादक मंडल

फिलहाल समाज की ओर से सी० जोशी (सी-८५ पंचशील एनकलेम) द्वारा प्रकाशित तथा मुद्रित।
मुद्रक न्यू स्टाइल प्रिंटर्स एण्ड स्टेशनर्स, महरौली, नई दिल्ली।